पाकर पाला पोसा, परशुराम जी ने विद्या पढ़ायी और बाण चलाना सिखाया। दुर्योधन के द्वारा उसने बड़े बड़े अधिकार पाये। कबीरदास की माता ने उन्हें तालाब में डाल दिया था। एक जोलाहे ने निकाल कर उन्हें पाला। रामानन्द जी स्वामी ने बनारस में उन्हें दीक्षा दे कृतार्थ किया। राजा सुरथ का राज छिन गया था, भगवती जी ने लड़कर दिला दिया। सावित्री के मृतक पति को धर्मराज ने जिलाया।

बनारस में वारुणी के मेले में एक बार एक नाव डूब गयी। जो मनुष्य तैरना जानते थे वे तैर कर बच गये। किसी बड़े घर की एक देवी भी अपना बच्चा गोदी में लिये बैठी थी। वह जब डूबने लगी तो बच्चे को अपनी गोदी में से किसी बेजानी स्त्री की गोदी में डाल दिया और आप जलकी धारा में बेबस हो बह गयी। दैवयोग से एक पछाँह का माड़वारी चार स्त्रियों के साथ नाव पर जा रहा था। उस स्त्री को बहते देख झट नाव पर से बीच नदी में कूद पड़ा और अपनी पीठ पर लाद नाव पर लाया और नहाना धोना सब छोड़ कर उस स्त्री के अच्छे होने के फिकर में लगा। दो दिन में जब वह स्त्री

अच्छी हो गयी, तब सारा हाल कह कर घबड़ायी कि हाय, मैंने बच्चे को न जाने किसकी गोदी में डाल दिया। माड़वारी बड़ा धर्म्मात्मा था। वह स्त्री उन्नाव के किसी रईस के घर की थी। उसने उसे स्वयं लेजा कर उसके घर पहुँचा दिया। घर के लोग बहुत प्रसन्न हुए। बच्चे को लेकर वह दूसरी स्त्री भी अपने घर गई उसने उसे पाल कर सयाना किया। वह लड़का बनारस में रहता था और उसे ही अपनी माँ जानता था। देखिये! लड़का किसका था और किसने पाला, स्त्री किसकी थी और किसने जान बचायी। इसी प्रकार हम लोगों को चाहिए कि जिसका समय बिगड़ा देखें उस पर दया करती रहें। प्रयत्न करने में न चूकें, शायद किसी न किसीके हाथ उसका दुःख दूर हो जाय। परिश्रम करना हम लोगों के हाथ में है, फल ईश्वर के हाथ में है। सदैव एक दूसरे के हित की कामना करते रहने से विपत्ति में अपने भी बहुत से हितू हो जाते हैं। पर याद रहे कि उपकार करने में बदला पाने की इच्छा कभी न रक्खे। उपकार करना सब प्राणियों का कर्तव्य है, सब का धर्म्म है। इस लिए उपकार करके यह कभी

न समझना चाहिए कि हमने किसी पर एहसान किया है। यदि हम उपकार करने में चूकें तो समझना चाहिए कि हमने मुफ्त की रोटी खायी, अपने धर्म्म को नहीं निबाहा और बड़े भारी दोष के भागी हुए।

दान दीन को दीजिए, हरै दरिद की पीर।
औषधि ताको दीजिए, जाको रुग्न शरीर॥

विधवाओं की दुर्दशा

हमारे देश में अगले समय में विधवाएँ पति के साथ सती हो जातीं थीं। जो जीती रहती थीं वे बड़े बड़े दुःख झेल कर अपने दिन काटती थीं। शास्त्र पुराण में बहुत अच्छी अच्छी बातें बहुत सोच समझ कर, अंतिम फल के ऊपर ध्यान देकर लिखी गयी हैं, लेकिन अब बे पढ़ी लिखी गँवार स्त्रियों ने अपना बुढ़िया पुराण अलग ही रच रक्खा है। विधवा के लिए शास्त्र की यही आज्ञा है कि ब्रह्मचर्य्य और संयम

नियम से बुरे बिचार को पास न फटकने दे, शुद्ध विचार रक्खे, धर्म्म, सदाचार ईश्वर-चर्चा और रोगी, दुःखी, बालकों तथा वृद्धों की सेवा में दिन काटे। इन उपदेशों का तत्व क्या है? ये नियम किस लिए रक्खे गये हैं? स्वल्पाहार, एक समय का भोजन, और अचार, तेल, मसाला, मदिरा, माँस आदि से परहेज़ क्यों बताया गया है? बात यह है कि इन नियमों से मन शुद्ध रहता है, शरीर आरोग्य रहता है और बुरी बासनाएँ नहीं उठतीं। ये सब नियम सयानी और समझदार बिधवाओं के लिए हैं। किन्तु आज कल बे-समझ स्त्रियाँ इन बातों को कोरा धर्म्म मान कर नन्ही नन्ही बिधवा लड़कियों से हठ पूर्वक ये नियम कराती हैं और उनसे बड़ी निठुराई का बर्त्ताव करती ह। समझदार बहिनों को कभी ऐसा अत्याचार न होने देना चाहिए।

पहिले तो सोलह बरस की उमर तक अच्छी तरह घर के सब तरह के काम और सब तरह की विद्या और कला सिखला कर तब बिवाह करे, जिसमें लड़की अपनी हानि लाभ पर विचार कर सके। बिधवा

स्त्री को चाहिए कि एक बार साबूदाना फल दूध आदि से अपना शरीर पाले। एक समय रोटी दाल तरकारी खावे, गहना न पहिने। साफ़ और सफ़ेद कपड़े पहिने। सिर के बाल बहुत लम्बे हों तो एक बीता से अधिक न रक्खे। अपना शरीर आरोग्य रखने के लिए हमेशा शुद्ध विचार से रहे रामायण, इतिहास, गीता आदि पढ़ती रहे। ईश्वर का ध्यान और जप में ज्यादा समय लगावे, अपने प्यारे पति की प्रतिमा वा चित्र की नित्य पूजा करती रहे। कुछ समय सीने पिरोने में लगावे। अच्छी अच्छी स्त्रियों की संगति में रहे, बिना अपने कुटुम्ब वा रक्षकों के तीर्थ न करे। अकेले घर में न रहे। ऐसी बातों का विचार रक्खे, जिससे इन्द्रियाँ अपने बस में रहें। जब कभी दिल म रंज आवे तो ज्ञान के द्वारा अपने मन को आप समझा कर उसे दूर करे। रोना या पड़े रहना कभी अच्छा नहीं। इससे शरीर भी रोगी हो जावेगा, और कुछ धर्म कर्म भी न बन पड़ेगा। घर की और स्त्रियों को चाहिए कि जो विधवा को कभी दुःख वा रंज में देखें तो हर तरह से किस्से, कहानी, नीति

और धर्म्म की अच्छी अच्छी बातें करके उसका जी बहलावें, और जो कुछ चीज़ घर के मर्द लावें, उसके ही सामने रख देवें। सब घर के काम काज में उससे ही सलाह लेती रहें। शादी ब्याह में अकसर स्त्रियाँ बिधवा को अशुभ जान उससे परहेज़ करती हैं किन्तु यह बड़ा अनुचित है। सधवा विधवा सब में ईश्वर का अंश है, किसी प्राणी में दोष नहीं समझना चाहिए। कभी रंज और खेद की बात करके दुःख की आग को तेज़ न करना चाहिए बल्कि ज्ञान के शीतल जल से इसे बुझाना चाहिए। दुःख की ज्वाला की शांति ज्ञान के सिवाय और किसी तरह नहीं होती। आजकल ऐसी कुरीति है कि जहाँ विधवा के पास दस औरतें जुटीं, लगीं रोने और भाँति भाँति से विलाप करने। एक तो उस बेचारी का यों ही कलेजा फट रहा है, दुःख की ज्वाला जल रही है, उस पर भी ऐसी ऐसी बातें मूढ़ स्त्रियाँ करती हैं कि बेचारी दम नहीं मार सकती। कोई बोली सिर में कंघी न करना चाहिए, कोई बोली पलँग पर न सोना चाहिए, कोई बोली इसके पास न बैठना चाहिए।

भला सोचने की बात है कि जिसके ऊपर विपत्ति पड़ती है, वह आप अपने मन में कुछ न कुछ सोचती ही होगी। कुछ दिन तो उसकी विचारशक्ति कुछ काम नहीं देगी। बाद को अगर वह भली हुई तो वह खुद सब फ़िकर ऐसा करेगी, जिससे वह सदाचारिणी कहलावे। फिर भला और और स्त्रियाँ क्यों वचन वाणों से उसके कलेजे को छेदती ही रहती हैं?

इन बातों पर विचार करके विधवाओं के जीवन के तीन विभाग करने चाहिए। जो ४० व ५० बरस की अवस्था में विधवा हों उनके लिए तो शास्त्र के अनुसार सब नियम रक्खे जावें, जिनको पहिले कह आयी हूँ। बीस या तीस बरस की उमर में जो विधवा हों उन्हें चाहिए कि देवाराधना ज्यादा करें, कुछ व्रत उपवास करें और अधिकांश समय ऐसे काम काज में वितावें, जिसमें अकेली बैठ कर सोचने, रंज करने या कुविचार करने का मौका न मिले। जो विधवाएं बारह सोलह बरस की हैं, उनके लिए खाना पीना पहिनना और ओढ़ना सब कुँवारी की तरह रक्खा जावे और उन्हें शुद्ध संगति, सुशिक्षा और

पवित्र उपदेश दिये जावैं तो वे आपही विचारशीला हो सब सांसारिक सुखों को तृण के समान समझने लगैंगी। विधवा से कभी कड़वे बचन नहीं कहना चाहिए। उनका कलेजा दुःख से जला हुआ है, कठोर बचन जले पर नमक का काम करैंगे। यह अन्याय ईश्वर से भी न सहा जायगा और कठोर बचन कहने वाली के ऊपर ईश्वर का कोप हो जायगा। जिसके शरीर पर आप घाव, है, उस पर तलवार चलाना जैसा पाप है, उसी तरह विधवा को कठोर बचन कहना महा पाप है। विधवा को जो कठोर बचन कहे जाते हैं प्रायः इस ढंग के होते हैं:—"जब से मर्द मरा कैसी मोटी हो गयी है। कपड़े गहने का ज्यादा शौक करती है,—ग़ैर मर्द से बात करना अधिक रुचता है, मेरे पति के पास न बैठे नहीं बहका लेगी, जब से पति मरा तब से अच्छी रहती है,—इत्यादि इत्यादि।" यही बातें विधवा के हृदय को फाड़ने वाली हैं। ऐसी कड़ी बात कभी ज़बान से न निकालनी चाहिए और न कभी मन में आने देना चाहिए। देखो! इसमें बहुत बड़ी बुराई है, कोई नहीं जानता

कि अपनी ही होनहार क्या है? कभी नाव गाड़ी पर कभी गाड़ी नाव पर। सदा ऐसी बात करे कि विधवा को सुख पहुँचें, उसके दुःख दूर हों, इसी सब में भलाई है॥

खुशामद-पसंद

आज कल जिन स्त्रियों के पास कुछ द्रव्य होता है, उनका स्वभाव बहुधा बेमिहनत के खाने वाले बिगाड़ देते ह। ऐसी स्त्री बहुत कम देखने में आवेंगी जो खुशामद पसंद न हों। इस दुनियाँ में सब एक हा स्वभाव के आदमी नहीं हैं। सच्चे, शुद्ध मन के सात्विकी प्राणी बहुत कम हैं। रईसो के यहाँ अधिकतर बहुत से स्वार्थी ही जुटे रहते हैं, जिन्हें झूठी बड़ाई करने के सिवाय कुछ काम ही नहीं है। जो स्त्रियाँ स्वतंत्र हैं, और जिनके कोई आगे पीछे नहीं है, उनको तो चाहिए कि जितनी आमदनी उनके

पास आती है उसे परोपकार में लगावें, क्योंकि उनके ऊपर किसी प्रकार का बोझ नहीं है। पति पुत्र वाली तो अपने आप कोई काम नहीं कर सकतीं, तथापि जहाँ तक देखा जाता है, पति पुत्र वाली स्त्रियों में तो कुछ परोपकार की श्रद्धा भी है, संतोष भी है, किन्तु विधवाओं में तो ऐसी कठिन तृष्णा होती है, ऐसा बिकट लाभ होता है कि कितना ही अधिक ऐश्वर्य्य हो जाय परन्तु उनका जी नहीं भरता। इसका मुख्य कारण यही है कि अपने में तो बुद्धि और विद्या है ही नहीं, नौकरों के भरोसे सारा काम करती हैं। अब ऐसे नौकर कहाँ देखने में आते हैं जो अपने मालिक को अच्छे मार्ग पर चलावें। अब के नौकर तो ऐसे ही हैं कि चाहे मालिक ऋणी हो जावे, चाहे उसका नाम कितना ही धरा जावे, पर उनको अपना स्वार्थ साधने से काम है। ऐसे ही खुशामदी लोगों ने नहीं मालूम कितनी रियासतों का नाश कर दिया। विधवाओं के नौकरों का तो यह हाल है कि जहाँ बेचारी ने अपने हिसाब के लिए पूँछ ताँछ की वहीं उसे धोखा देने लगे। "आपकी आमदनी तो सौ

रुपये को है और मैं ने अपनी बुद्धिमानी से डेढ़ सौ की कर ली है।" "यह कपड़ा दस रुपये थान मिलता है, मैं पाँच ही पर लाया हूँ।" "यह मकान तो आपके पट्टीदार लोग बहुत बिगाड़ रहे थे, मैं ने उन लोगों से लड़ झगड़ कर बचा लिया।" "मैं तो आपका निमक खा रहा हूँ, आपको तो मैं महा लक्ष्मी समझता हूँ।" "आप भाग्यवती हैं, धर्मात्मा हैं। आपका मैं एक पैसा भी नहीं लेता हूँ और न मेरे जान में कोई लेने पाता है।" "आपके वंश के लोग मुझ से बहुत डाह रखते ह, उसका कारण यही है कि जो मैं आपका काम ईमानदारी से करता हूँ।" ये खुशामद करके बाहर जा बैठे और ख़िदमत गारिनों को बुला कर दो रुपये थमा दिया कि "लो! सरकार के नेवछावर है। मेरी लड़की की शादी है, सरकार से ज़रा बिनती कर देना कि मैं तो नज़र भेंट तक नहीं लेता हूँ, मेरे घर मैं अगर देखें तो एक फूटी कौड़ी भी न निकलेगी।" अब क्या कहना है, सेवकी आकर लगी बड़ाई करने। "ऐसा नौकर ईमानदार मिला है कि एक जगह से सौ रुपया मिलता है पर नहीं जाते।" अब

सरकार को कहाँ इतनी समझ है कि सच्ची बात क्या है। वह तो बेचारी शुद्ध विचार की स्त्री अपने मन में समझ गयी कि निस्सन्देह हमको ऐसा नौकर न मिलेगा। इधर तो बेवा बेचारी सीधी साधी नौकर के विश्वास पर बैठी है, और उधर नौकर महाशय रिआया से कह रहे हैं कि सौ रुपया हमको दे दो तो तुम्हारे नाम से कब्जेदारी का पट्टा कर देवें और बेवा को यों ठगने लगा कि सौ के बदले दो सौ रुपये मुक़दमात के ख़र्चा के लिए लिया। यहाँ तक कि गहने तक बँचवा लिये। ऐसी ऐसी हालतें जब विधवा के बंश वालों को मालूम हुई और वे उस नौकर के निकालने के लिए तदबीर करने लगे तो वह विधवा जाँच तो कुछ भी नहीं करती पर रोना धोना आरम्भ कर देती है। और उलटा अपने बंश के लोगों से लड़ जाती है कि "यह जो हमारा काम अच्छी तरह ईमानदारी से करता है सो ये लोग देख नहीं सकते।" घर वाले बेचारे लड़ाई झगड़े के डर से चुप हो रहे। इसी तरह इन स्वार्थियों के मारे विधवाओं के दम से कभी नेक काम नहीं होने पाता।

जब तक इन सब बातों को हम लोग न समझेंगी तब तक हम लोगों का कल्याण नहीं होगा। हमारी बहिनें अगर सलाह लेना चाहें तो अब आजकल बहुत सी हमदर्द दयामयी बहिनें विद्या व बुद्धि में एक से एक प्रवीण हैं जिनकी सलाह से अच्छे ढंग से अच्छे मार्ग पर हम लोग चल सकती हैं और बदनामी से भी बच सकती हैं॥

समय तथा धन का उत्तम विभाग

अपनी पहिली पुस्तक "भगिनी-मिलन" में 'व्यय का प्रबन्ध', 'पतिव्रत धर्म', और 'आपस का मेल' पर लिखा जा चुका है, उसे इस पुस्तक में दुहराने की ज़रूरत नहीं है। अब मैं अपनी बहिनों को वह बातें दिखाना चाहती हूँ, जिससे अंत समय तक अच्छी तरह कटे। बीस बरस तक तो लड़कपन रहता है। इसमें केवल शिक्षा पाना, हर तरह से विद्या को प्राप्त करना सभी

का काम है। इस विद्या से बीस बरस से पचास बरस की उमर तक, अर्थात् तीस बरस तक जो काम लेना ज़रूरी है, जो कुछ तद्बीर अपने और पराये दोनों के लिए मनुष्य कर सकता है उसका यही समय है। सब से बढ़ कर स्वार्थ यही समझना चाहिए कि इसी तीस बरस के अंदर ऐसे लाभ का फ़िकर करें जिसमें कुछ दिन तक हमारा सुयश बना रहे। राजा भर्तृहरि को मरे हुए सैकड़ों बरस हो गये, किन्तु उनका सुयश अमर है। जितनी तरह के जीव इस विश्व में ब्रह्मा ने सिरजे हैं, उन सब में सब से दुर्लभ शरीर मनुष्य का है। जो इस शरीर में अपना सब न साध लेगा उसको सदा पछतावा रहेगा। मलिक महम्मद ने क्या अच्छा लिखा है:—

जिन न चिन्हारी कीन्ह, यह जिय जब लगि पिंड महँ,
पुनि कछु परै न चीन्ह, महमद यह जग धंध है।

यह कौन नहीं जानता कि एक ही स्त्री पहले लड़की रहती है, पीछे वह गृहिणी हो जाती है, अन्त को बूढ़ी होकर उसे भी बहुत दिन तक जीवन बिताना पड़ता है। जब तक लड़कपन रहता है, दूसरे क

सहारे सब काम करना पड़ता है। जीवन खेल कूद में खुशी खुशी कटता है। माता पिता के लाड़प्यार के कारण कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता। फिर २० बरस से ५० बरस तक गृहस्थी के काम-काज में शादी, ब्याह, मुंडन, छेदन में और अपने पति पुत्र से आदर पाकर जीवन को अहंकार से बिताती हैं। इसके बाद चाहे जितने दिन अवस्था के शेष रहैं, उन्हें हर तरह ईश्वर के भजन में बिताना चाहिए। किन्तु प्रायः इसको न करके अपना चित्त दुःखी रखना पड़ता है। इसका मुख्य कारण यही है कि तीस बरस की उमर से अवश्य कुछ उलट फेर होजाता है। जो बातें हम लोगों के ज़माने में अच्छी समझी जाती हैं, हमारी बड़ी बुढ़ियों के समय में वही बातें बुरी मानी जाती थीं। जैसे कुछ रोज़ पहिले माता पिता के सामने अपनी औलाद का लाड़ प्यार करना लाज की बात समझी जाती थी। अब हम लोग इसी लाज को ऐब समझते हैं तो बुजुर्गों के नगीच यह बात उलटी जँचती है, क्योंकि उनके विचार में तो पुरानी बात भरी हुई है उनको यह क्यों अच्छी लगे। यह तो एक है, ऐसी ही ऐसी

हज़ारों बातें समझ लीजिये। पहिले के लोग इनको बुरा समझते हैं और नाती पुत्र बहू बेटी आदि कुटुम्बियों की सब बातें पहिले से विपरीत देख कर कुढ़ने और कोसने लगते हैं। सुनने वालियाँ जो समझदार हुई तो हँस कर चुप हो जाती हैं। जो झगड़ालू हुई तो कह ही बैठती हैं कि "क्या बक बक करती हो, चुप नहीं बैठी रहतीं ? न समझती हैं न बूझती हैं।" लीजिये बड़ी बूढ़ियों के नगीच ऐसी बात कहना थोड़ा कसूर नहीं है। साथ ही साथ संसार में यह भी असम्भव है कि घर में दस औरतें हों तो दसों का एक सा अच्छा ही ढंग हो और दसों बराबर लाज करें। आप लोग अकसर देख ही रही हैं कि बूढ़ी स्त्री वा पुरुष को हर तरह लोग तरह तरह की बातें सुनाया करते हैं। ज़रा सोचिये तो सही कि इसकी वजह क्या है। मेरे ख्याल में तो यही आता है कि लड़का जो सिवा खेलने कूदने व लड़कपन की बात करने के, कहीं अपने पराये में भेद वा पहिचान करने लगता है और कुछ समझदारी की बात कहने लगता है, तो तनिक भी अच्छा नहीं लगता। लड़के

का लड़कपन ही सबको भाता है। इसी तरह जवानी में जो लड़कपन करते हैं, या लड़कों की तरह बे सोचे समझे बोल उठते हैं, तो उनका भी यह ढंग किसी को अच्छा नहीं लगता। उनसे जवानी का काम-काज ही होना अच्छा लगता है। इसी तरह बड़े लोग जो धन उपार्जन की चिन्ता या तदबीर करने लगते हैं तो लोग कहने लगते हैं कि "जब ईश्वर के भजन करने का समय आया तो और लालच बढ़ा लिया है, तृष्णा ज्यादा बढ़ गयी है।" यदि कोई बूढ़ी हँसी मज़ाक की बात बोली तो कहने लगीं, "देखो बूढ़ी हुईं, आज तक ऐसी बातों की याद भूली नहीं," नाच तमाशे में जाने पर लोग कहते हैं, "अभी तक नाच देखने का शौक नहीं मिटा।" किसी को कुछ समझाने लगते हैं तो लोग कह उठते हैं, "आप क्षमा कीजिये, अब वह समय नहीं रहा।" निदान जिधर देखिये तिधर से इसी तरह की धिक्कार ही धिक्कार सुनायी देती है। इससे जीवन को सुख नहीं मिलता। हर तरह जिस परिवार को बड़े बड़े प्रयत्न से पाला पोसा, जिस के आराम व सुख से रहने के लिए नाना उपाय किये, उसी परिवार से

बहुत दुःख उठाते हैं और अज्ञान वश हृदय का कपाट तो खुलता नहीं कि किसी तीर्थ में जाकर सब बातों से निवृत्त हो जा बैठें। बल्कि ऐसी मोह माया में फँस जाते हैं कि दुःख भी सहते हैं, तरह तरह के धिक्कार भी सुनते हैं, उस पर भी एक न एक बात बिना बोले नहीं मानते। बूढ़ियों के खर्च की ऐसी हालत होती है कि पसे पसे का मुहताज हो जाती हैं। जवानी का दिन एक वह था कि हज़ारों की मालिक रहती थीं। जब बुढ़ापा आ गयी, और अपना समय गया तो फिर पैसे ख़र्चने का अधिकार कहाँ रहा! अपनी आवश्यकता को दूसरा कभी नहीं समझ सकता, अपना मर्द भी नहीं समझ सकता, कारण यह है कि हर मनुष्य की समझ का एक दूसरे की से मिलना ईश्वर की प्रकृति के प्रतिकूल है। हम किसी काम में दस रुपये ख़र्चना ज़रूरी समझती हैं, हमारे पति पाँच ही अच्छा समझते हैं, हमारे लड़के बीस रुपये खर्चने में उत्तमता देखते हैं। अब एक दूसरे से भेद हुआ कि नहीं? कोई दान पुण्य में व्यय उत्तम समझता है, कोई अपने साज-सामान में ही प्रसन्न रहता है। इसी तरह

जिसकी बुद्धि जैसी हुई, वैसी ही बात वह ठीक समझता है। इससे वह करना चाहिए, जिसमें बुढ़ापे में जो धिक्कार सुनना पड़ता है, उसका प्रबन्ध हो जावे। इसका यही उत्तम प्रबन्ध मेरी तुच्छ बुद्धि में आया है कि यदि बीस बरस से पचास तक दो आने रोज़ जिसको खाने को मिलता है, वह उसमें से एक आना अंतिम दिवस के लिए रखती जावे तो तीस बरस के अंदर ७२०) हो जावेंगे। अगर कुछ किफ़ायत करके किसी तरह कुछ और बचा सकें, तो एक हज़ार रुपया भी इकट्ठा कर सकती हैं और फिर उसी रुपये को बंक में रख दें तो मूल रुपया बचा रहेगा, जो मरने के बाद लड़के वाले भी पा जावेंगे और ज़िन्दगी भर एक आदमी की खुराक दो आना रोज़ आसानी से मिलती रहेगी। यह तो उन लोगों के लिए है जो मजदूरी से पेट पालती ह। इसी तरह अगर साल में २५०००) आमदनी हुई और एक हज़ार बचा करके रखती जावें तो तीस बरस में तीस हज़ार हो जावेंगे जिसके ब्याज से दस पाँच और साथियों को ले तीर्थ में बैठ कर बुढ़ापे में ईश्वर का भजन हो

सकता है। ऐसा करने से बुढ़ापे में मोह मायां छोड़ कर तीर्थ मेँ रह जिसकी जैसी हैसियत हो निर्बाह कर सकता है। जो ग़रीब हैं वे ४॥) रु० महीने मेँ अच्छी तरह अपना पेट पाल कर तीर्थ मेँ या अपने ही गावँ के किसी एकान्त स्थान मेँ निवृत्त होकर शेष जीवन बिता सकती हैँ। इसमें बेटा बहू नाती परिवार गाँववाले सब खुश भी रहेँगे और कभी कभी दर्शनों को परिवार के और गाँव वाले आया जाया भी करेँगे और अपने ऊपर जो संपूर्ण भलाई बुराई का भार है, वह भी सिर पर से उतर जावेगा। जीवन बहुत अच्छी दशा में कटेगा और बहुत दिन तक सुयश बना रहेगा और सब बातोँ से निवृत्त होकर ईश्वर के भरोसे ईश्वर के शरण में जाने से ईश्वर सहायक रहेगा। जहाँ सब भरोसा छोड़ कर ईश्वर को पहिचाना और उसकी रांह पर पैर रक्खा, ईश्वर ने झट बाँह पकड़ खैंच कर अपने मेँ मिला लिया। धन जब ही हमसे भागता है, जब तक हम उसका सदुपयोग नहीँ जानतीँ और उससे वास्तविक घृणा करने के बदले वृथा को लोभ करती हैँ।

सुत बित नारि जानु स्वारथ रत,
मति करु नेह इन्हीँ ते।
इक दिन तोहि तजेंगे पामर,
तू न तजे अब हीँ ते॥

ऐसे दीनदयाल को अंत मैँ न भजोगी तो किसे भजोगी। सब से बढ़ कर दोष पति का त्याग सो मीरा ने किया, गुरू का त्याग राजा बलि ने किया, माता का त्याग भरत जी ने किया और पिता का त्याग प्रह्लाद जी ने किया। इतने पर भी इन लोगोँ ने ऐसे ऊँचे पद पाये। फिर भला वे लोग जिन्होँने नियम के साथ पहिले विद्या पढ़ी, फिर उससे काम लेकर गृहस्थ आश्रम मैँ सब को प्रसन्न रक्खा और अंत मैँ सब को यथाशक्ति आदर भाव से दे लेकर अपनी गाढ़ी कमाई से अपना पेट पालने भर का उपाय करके ईश्वर की शरण ली वे क्योँ न उत्तम पद पावेँगे। भला इससे उत्तम और कौन काम हो सकता है?

"माया मोह को छोड़ दिया है थूक दिया धन प
कह कबीर सुनो भाई संतो ताकि लिया बन पै॥"

माता पिता का हक़

प्रबन्ध इसको नहीं कहते कि अपना ही पेट पाले, या बिना ऋण लिये शादी ब्याह कर लेवे। अच्छा प्रबन्ध करना बहुत बड़ी बुद्धि का काम ज़रूर है, परन्तु कोई ऐसा काम नहीं है जो होशियार और दूरदर्शी आदमी के लिए दुःसाध्य हो। व्यवसायी मनुष्य एक पैसे से एक हज़ार रुपये और एक हज़ार से एक लाख रुपये पैदा कर सकता है। पिता वही है जो पुत्र के साथ अपना हक़ अदा करे और सासु वही है जो पतोहू के साथ अपना हक़ अदा करे। पुत्र के साथ पिता का यही धर्म है कि पहिले पूर्ण रीति से विद्या पढ़ावे, व्यापार शिल्प आदि की शिक्षा दे, सदाचार और अच्छे गुण सिखावे, फिर किसी सुयोग्य कन्या से विवाह करा दे। उसे हर तरह गृहस्थी सँभालने लायक करके उसके ऊपर माल असबाब और जायदाद का भार देकर आप अलग रह कर ईश्वर के ध्यान में चित्त लगावे। यह काम तभी हो सकता है जब अपना बन्दोबस्त

ठीक हो। बाबा दादे की आमदनी मान लो कि १००) महीने की थी तो हमको चाहिए कि उस पुरानी जायदाद को भी बचाये रहे और १००) या इससे अधिक या कम की आमदनी की जायदाद अपने प्रबंध से भी पैदा करे, तब हम पुत्र के धर्म से अदा हो सकते हैँ। जो पहिले की आमदनी थी, वह तो पुराने बंश की संचित की हुई जायदाद ठहरी, वह होनहार बंश की धरोहर है। उसमेँ कमी करना अमानत मेँ खयानत करना है, और उसको बचाये रहना मुख्य कर्त्तव्य है। इस धरोहर की रक्षा के उपरांत जो कुछ अपने निज प्रबन्ध का ठहरे, जो स्वयं पैदा करे उसमेँ से ही उसे अधिकार है कि जो चाहे तालाब कुआ बाग़ बनवावे, दान पुन्य करे और अपनी जिन्दगी भी बसर करे, बाद को आधा नयी पैदा की हुई जायदाद मेँ से अपनी संतानोँ मेँ बाँट देवे, आधा विश्व-विद्यालय जैसे काम जहाँ छिड़े होँ उनमेँ लगावे जिसमेँ अपने समाज को लाभ पहुँचे। इसीको उत्तम प्रबन्ध कहते हैँ। इस बात को विस्तार के साथ लिखने मेँ ग्रन्थ बढ़ जायगा, इससे थोड़े ही मेँ लिख कर खतम करना चाहती हूँ। "थोरेहि महँ

जानिहहिँ सयाने।" सास का यह हक है कि जो जायदाद—गहना बर्तन इत्यादि—घर मेँ पहिले की संचित की हुई हो उसको बहुत होशियारी से बचा रक्खे और उतना ही सामान नया भी इकट्ठा कर रक्खे, जब बहू आवे तब जितनी नयी और पुरानी चीजेँ होँ सब उसके हाथ मेँ ऐसी प्रसन्नता से सौँप देवे जैसे पहरे के सिपाही जब अपना पहरा खतम करते हैँ तो अपनी ज़गह लेने वाले नये सिपाही को पहरे की सारी चीजोँ का चार्ज देते हैँ—सौँप देते हैँ। और बहू को योँ बतावे कि तुम्हारी इतनी चीजेँ पुरखोँ की संचित की हुई हैँ और तुम्हारी इतनी चीजेँ मेरे मुख्य प्रबन्ध से इकट्ठा हुई हैँ। इसमेँ से आधी मेँ तुम लोगोँ का हक़ है और आधी मेँ अपनी बाकी जिन्दगी अकेली मैँ व्यतीत करूँगी। और जो कुछ नकदी होवे, आधी तो बहू बेटियोँ मेँ बाँठ देवे, आधी महामण्डल सरीखे कामोँ मेँ लगावे। ऐसा करने से बहू को यह विचार होगा कि मैँ भी ऐसा ही करूँगी, आगे को मुझे भी किसी के सामने चार्ज देना पड़ेगा—किसीको सौँपना पड़ेगा। यह समझ कर विचार के साथ घर का खर्च

वगैरह करेगी और सास से खुश भी बहुत रहेगी और वह भी अपना धर्म सास के साथ निबाहेगी। परन्तु जो कहीं सास वही जायदाद पुरानी बचाये रहे और अपने निज प्रबन्ध से बीस बरस के भीतर अपने लिए कुछ न कर रक्खे तो समझना चाहिए कि अगर १००) की आमदनी अकेली सास के खर्च को काफ़ी थी तो पतोहू का खर्च अब ५०) रु० निकल जाने से सास को कष्ट होगा और देना लेना परोपकार कहाँ से होगा। बहुत सी कम-बुद्धि बहुएँ अकसर ऐसी बात कह बैठती हैं जिससे उनका मुख्य अभिप्राय यही मालूम होता है कि सास के जीते जो मुझे वह अवसर कब मिलेगा कि पूर्ण रीति से घर की मलिकिन बनूँ। अगर अपना प्रबन्ध पहले से ही ठीक रहे तो ऐसे ख्याल की नौबत क्यों आवे? कुटुम्बी लोग तभी तक मुझसे कुढ़गे जब तक मेरा बोझ उनके ऊपर है। जब हमारा बोझ हमारे ही ऊपर रहेगा तो कोई काहे को दुःख मानेगा? कोई कोई कहते हैं कि दुष्ट स्वभाव वाली बहुएँ बहुत से इहसान पर भी राजी न रहेंगी और भली होंगी तो सास के पास

कुछ भी न रहेगा तब भी अपनी सास को देवता सरीखी पूजेंगी—यह बात ठीक है, परन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि—

"जल संकोच बिकल भये मीना।
बिबिधि कटुम्बी जनु धन हीना॥"
(तुलसीदास)

आमदनी थोड़ी हो और खर्च बढ़ा हुआ हो तो बहुत बड़ा संकट मालूम होता है, और आयी हुई बुद्धि दूर भागती है। जब पुरानी जायदाद से केवल स्त्री पुरुष दो ही का खर्च कठिनता से चलता है तो यह ख्याल ज़रूर करना चाहिए कि जब दो ही आदमी इस जायदाद से नहीं बिता सकते हैं तो लड़का होगा तो उसका पालन पोषण पठनादि कहाँ से चलेगा? इस बात को सोच कर जब अपने को इस योग्य बना लेवें कि तीसरे का पालन पोषण और तालीम आसानी से कर सकें तब उसे चाहिए कि संतान पैदा करने का साहस करे। नहीं तो दोनों खावें पीवें और ईश्वर का भजन करें। इसी लिए जब खूब समझ लेवे कि अब मैं इस जायदाद को अलग

कर अपना पालन कर सकता हूँ और बेटी बहू के निर्वाह करने योग्य यह जायदाद हो गयी है, तब सन्तति की शादी करे।

अगर कोई यह कहे कि मन से विरक्त होना चाहिए अलग रह कर बखेड़े छोड़ने से क्या फ़ायदा है, क्योंकि जनक जो तो घर ही में विषय-वासना से रहित थे। मेरी समझ में तो ऐसा ख्याल करना बिलकुल ठीक नहीं है। अकेले में जो सुख भगवान के चिन्तवन में हो सकता है घर में कभी नहीं हो सकता। एक को सरदी है, दूसरे को बुखार है, कोई कहता है कि नातेदारी में ग़मी हुई, कोई कहता है कि एक शादी है,—यों एक न एक चिन्ता बनी रहती है। विषय-वासना के प्रथम द्वार कान हैं, पहिले कान से जब कोई बात भली बुरी सुन पड़े तब उसका असर मन पर पड़ता है और मन चंचल हो जाता है। अभी आप थोड़ी देर जप-ध्यान करके देख लीजिये। जहाँ पर कोई बोलता न हो और एकान्त स्थान हो वहाँ पर जप ध्यान करने से थोड़ी ही देर के बाद साँस ऊपर को आसानी से चढ़ने लगता है और

ईश्वर का ध्यान बँधने लगता है और यह मन नहीं चाहता कि फिर उठूँ, बल्कि आसन ऐसा सुदृढ़ बँध जाता है कि जिसको छुड़ाने में बहुधा कोशिश करनी पड़ती है और यह मालूम होता है कि बहुत बड़े आनन्द को छोड़ रहा हूँ। फिर इन सब बातों से छुट्टी लेकर अकेले में निश्चिन्त होकर बैठें और उन लोगों से बात चीत करें जो लोग सत्य विचार में दृढ़ हैं। ऐसे साधू महात्मा की संगति से बहुत कुछ लाभ होता है। सब से सहज बात एक यही देखिये कि जब आप अकेली थीं तब कैसी अपने पति की सेवा में लगी थीं पति ही का स्मरण, पति ही का ध्यान, पति ही में प्रेम, पति ही को जीवन प्राण मानती थीं। जब आप बाल बच्चे वाली होती ह तब स्मरण ध्यान प्रेम सब थोड़ा थोड़ा करके आपही आप सब में बँट जाता है। इधर पति के लिए जल पान लेकर चलीं और लगा लड़का चिल्लाने। अब जल पान रख कर लड़के को उठाना पड़ा। बाल-बच्चों वाली स्त्रियों को एक बीड़ा पान देने में हज़ारों तरह का संकोच होता है और आदर सत्कार करना तो

दुर्लभ हो हो जाता है। इसी तरह से भजन में भी समझना चाहिए। यह साधारण मनुष्य से कभी हो नहीं सकता कि गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी मन से विरक्त हो कर ईश्वर का स्मरण करे।

जो मन नारि की ओर निहारत,
तो मन होत है नारि के रूपा।
जो मन काहु से क्रोध करे,
तब होत है क्रोध हि के तदरूपा॥
जो मन माया हि माया रटै,
नित सो मन बड़त माया के कूपा।
जो मन सुन्दर ब्रह्म विचारत,
सो मन ब्रह्महि के अनु रूपा॥

धैर्य

इस शरीर में धैर्य्य भी बड़ी अमूल्य वस्तु है। क्रोध-रूपी अग्नि के लिए धैर्य्य शीतल जल है और लोभरूपी समुद्र के पार निकालने में धैर्य्य बड़ा भारी जहाज है और धैर्य्यवान हनूमान है। माया रूपी बन्धन के काटने

को सुदर्शन चक्र के समान, काम रूपी शत्रु को जीतने में शंकर के तुल्य है। असमय रूपी काठ के लिए धैर्य्य ही तीव्र कुठार है, शोक में धैर्य्य ही सहायता करता है। बीमारी में धैर्य्य ही साथ देता है, जितने काम संसारिक हैं—योग, जप, तप, संयम, साम, दाम, दंड, भेद, राग, रंग, खेल, तमाशे, रसोई, सीना-पिरोना पढ़ना इत्यादि चौसठ ६४ कला ३६ गुण, नवों भक्ति—सब में धैर्य्य और दूरदर्शिता काम आती है। इन दोनों के बिना कोई काम दुनियाँ का उत्तम रीति से नहीं हो सकता। हमारी बहिनों को चाहिए कि धैर्य्य और दूरदर्शिता को सदैव काम में लावें। कोई काम बेहिसाब और धैर्य्य हीन होने से ठीक नहीं होता॥

"कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचो नीर॥"

अनुशासन-धर्म्म

आज्ञा देना उसीका काम है जो अपने समाज में सब से बड़ा या सब का मालिक होता है। आज्ञा ही के भीतर स्वर्ग और आज्ञा ही के भीतर नरक है। हुकुम ही के अन्दर नेकनामी भी है और बदनामी भी है। बड़प्पन, मालिकी, प्रभुता की जान हुकुम ही है, माल हुकुम ही है। इसीलिए इस पर खूब विचारो कि आज्ञा यकायक शीघ्रता के साथ न निकले। छोटी बातों में, जैसे उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना इत्यादि में, कुछ समय सोच कर आज्ञा देनी चाहिए; और बातों में जैसा काम होवे वैसा समय लगाना चाहिए। बहुत सी बातों में तो ऐसा संदेह हो जाता है कि सत्यता के मालूम करने में बरसों लग जाते हैं। जब तक कि तत्व का ठीक ठीक पता न लग जाय, आज्ञा न निकालनी चाहिए, और आज्ञा निकालने के पहले बहुत सोच समझ कर दूर-दर्शिता के साथ फल पर विचार कर लेना चाहिए।

मालिक को उचित है कि सब की आत्मा को एक दृष्टि से देखे। खाने में और पहिनने में सब की ओर एक सा ध्यान रखना चाहिए। किन्तु गुण अवगुण जानने में अवश्य दो नज़र होनी चाहिए। ऐसा करने में वस्तुतः स्वामी की श्रेष्ठता है।

अच्छे और बुरे की पहिचान करना मालिक का परम धर्म्म है। प्रजा और राजा का वैसा ही बर्ताव होना चाहिए जैसा कि रामचन्द्र जी ने भरत जी से कहा है:—

"सेवक कर पद नैन से, मुख से साहब होय।
तुलसी प्रीत कि रीति यह, सुकवि सराहत सोय॥"

इसका यह अर्थ है कि इसी जीभ ही के लिए पैर से चल कर बाग़ में या खेत में पहुँच कर और हाथ से भोजन की सामग्री इकट्ठी कर, आँख से उसका गुण अवगुण देख, फिर भोजन की सामग्री तैयार करके मुख में रक्खी जाती है,—साथ ही साथ मुख को और और अंगों से इतना प्रेम रहता है कि उस भोजन को अपने ही में नहीं रख लेता, बल्कि पेट को दे कर उसके द्वारा सब को बराबर पहुँचाता

है। इसी प्रकार राजा को चाहिए कि हर तरह से प्रजा से ले कर कोष को भरे और उस कोष से द्रव्य लेकर प्रजा जन के लिए तालाब, बाग़, स्कूल, अस्पताल, धर्म्मशाला, कार्य्यालय, पशुशाला, अनाथालय आदि सब को सुख देनेवाली संस्थाएँ बना कर सैकड़ों यत्न से प्रजा की रक्षा करे। ऐसा ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—

"मुखिया मुख सम चाहिए, खान पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥"

अपना पराया

बहुत सी बहिनों का ऐसा स्वभाव होता है कि अपने पराये की चर्चा बहुत रखती हैं। अपने पति पुत्र से कुटुम्ब में किसीसे कुछ झगड़ा हुआ या अपने बच्चे को किसी दूसरे के लड़के ने मार दिया, तो तुरन्त नाखुश हो कर अपना पराया गाने लगती हैं और यह ज़रा भी

नहीँ ध्यान देतीँ कि असल मेँ दोष किसका है। इसके सिवाय अपने पास वालोँ का और अपना दोष बिलकुल नहीँ देखतीँ और दूसरोँ का ज़रा ज़रा सा ऐब पकड़ती हैँ। हमारे नज़दीक ऐसा करना बहुत ही अनुचित बात है क्योँकि सब कोई अपने अपने कर्म का उत्तरदाता है। किसी प्राणी के पाप और पुण्य को दूसरा नहीँ जानता। अपनी ही बुद्धि को अदालत वा न्यायाधीश बनाना चाहिए और मन और इन्द्रियोँ को मुद्दई मुदआअलेह, वादी प्रतिवादी, बनाना चाहिए। बुद्धि के द्वारा सदा न्याय करना चाहिए क्योँकि बुद्धि ही के सहारे इतना बड़ा भवसागर पार करना है। और मन तो बड़ा दुष्टकर्मी है। सब से बढ़ करके इसको अपना शरीर प्यारा लगता है। देह के सिवाय अपने नगीची भी प्यारे लगते ह और इससे आदमी पक्षपात से अन्धा होकर न्याय नहीँ करता और अपना नगीची कितना ही अपराधी हो उसे पूरा निर्दोष देखता है, और जिसे पराया समझता है, वह कितना ही निर्दोष हो उसको ही अपराधी ठहराता है। इस बात को भूल जाता है कि ममता के वश सरासर

अन्याय करके मैं अपने सिर पर घोर पाप ले रहा हूँ और जिसका झूठा पक्ष लेकर मैं आज लड़ रहा हूं वही अन्त को मेरे कुकर्म के फल भुगतने में साथ न देगा, प्रत्युत विरोध करेगा। जब ऐसी दशा है, तब न्याय-बुद्धि छोड़ कर अपनों का झूठा पक्ष लेकर लड़ना कैसा बड़ा पाप है? वाल्मीकि ऋषि पहले बटमार थे। सनकादिकों को दैवयोग से उसी मार्ग से जाना पड़ा। वाल्मीकि की जबरदस्ती पर सनकादिकों ने पूछा, "तुम लुटेरे और हत्यारे का घोर अपकर्म्म क्यों करते हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "कुटुम्ब पालने के के लिए"। सनकादिकों ने कहा, "अच्छा कुटुम्बियों से पूछ आओ कि वे इन पापों के फल भुगतने में भी तुम्हारे साथी होंगे? हम तुम्हारे आने तक ठहरे रहेंगे।" निदान वाल्मीकि गये और कुटुम्बियों से वही प्रश्न किया। उनमें से हर एक ने कहा, "मैं पाप का साथी नहीं हूं। अपने पाप तुम्हें आप भुगतने होंगे।" इस जवाब पर वाल्मीकि को ज्ञान विराग उत्पन्न हो गया। उन्होंने उस घोर कर्म्म को छोड़ दिया और उसी समय से सुमार्ग में पाँव रक्खा।

कबीरदास ने भी लिखा है कि—,

"भाई बंधु औ' कुटुम्ब कबीला, औ' बेटा औ' नाती।
असमय में कोई काम न आवे, समुझि फटै है छाती ॥"

नानकशाह ने लिखा है कि—

"भादों जात यों पहिचानो जैसे रयन सपना।
मातु पिता औ' कुटुम कबीला, कोई नहीं अपना ॥
किसी के कौन काम आवे,
दौलत दुनिया माल खजाना सबै, छोड़ि जावै ॥"

पल्टूदास ने लिखा है कि—

"आग दिया मुख, लाय काठ बहु भारा।
पुत्र लिहे कर बाँस सीस गहि मारा ॥
जे बैरी के मूल ताहि हित जाना।
पल्टूदास गुरुज्ञान समुझि अलगाना ॥"

क्रोध

क्रोध जब आता है तब ऐसी ऐसी बातेँ मुँह से निकालती हैँ जो दूसरोँ के हृदय पर गहरी चोट करती हैँ और अपने जी मेँ यह आता है कि कौन सी ऐसी कठोर बात कह डालूं जिससे दूसरे को अधिक से अधिक दुःख पहुँचे, किन्तु क्रोध के बाद प्रायः उन्हीँ सब बातोँ को याद करके पछताना पड़ता है। बहुत सी तो ऐसी होती हैँ कि जिस बात के कहने से किसीकी मर्य्यादा मेँ अन्तर आता है उसको भी क्रोध मेँ कह डालती हैँ। जब क्रोध आवे तब ऐसा चुप हो जावे कि मानो मौनव्रत धारण किया हो। क्रोध रोकने के लिए यह सबसे बढ़ कर दवा है। क्रोध मेँ चुप हो जाने से थोड़ी देर तो बहुत कष्ट मालम होता है परन्तु क्रोध उतर जाने पर बहुत बड़ा सुख प्राप्त होता है और साथ ही सुयश भी होता है, ओर पुण्य योँ होता है, कि अपने ऊपर

दुःख सह करके दूसरोँ को अपने 'क्रोधाग्नि से बचाया।

जो तुम चाहौ अधिक रस, सीख ईख ते लेहु।
जो तुमसोँ अनहित करै, ताहि अधिक रस देहु॥

सभा

सभा ऐसी रीति से करनी चाहिए जिसमेँ सम्पूर्ण बहिनोँ को लाभ पहुँचे। पहिले तो यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि सभा किस विषय पर की जा रही है। एक सभा तो शादी ब्याह इत्यादि खुशी के काम मेँ होती है और दूसरी अपने समाज के सुधार मेँ होती है। यहाँ पर मैँ अपने समाज के सुधार ही के बारे मेँ कुछ लिखा चाहती हूँ।

जिस दिन सभा करना ज़रूरी समझा जाय, तिथि नियत करके चतुर सुयोग्य बहिनोँ को पहले

से ही सूचित करना चाहिए जिसमें वे लोग अपना अपना व्याख्यान तय्यार करें और साधारण बहिनों को भी कुछ दिन पहिले ही निमंत्रण देना चाहिए जिसमें वे लोग भी सभा में आने के वक्त का ख्याल रक्खें और कपड़े वग़ैरह भी निकाल कर ठीक रक्खें। जिस दिन जिनके यहाँ सभा हो वे कुछ मिठाई पान इलायची इत्यादि ठीक कर रक्खें। एक कमरा तो इस काम के लिए सजा रक्खें कि जो बहिनें आती जायँ उसमें बैठा ली जायँ और दूसरी कोठरी में केवल पानी पीने के सामान की ज़रूरत है। ज्यों ज्यों बहिनें सभा में आती जायँ उनको बड़े आदर और सत्कार से उतार लावे। जब सब बहिनें इकट्ठी हो जावें तब सभा मंडल में बैठना चाहिए और जो सब बहिनों में विद्या में बुद्धि में श्रेष्ठ होवे उसको ही सबसे उच्च आसन देने का प्रस्ताव करना उचित है।

सभा में प्रस्ताव करने का साधारण दस्तूर यह है कि कोई प्रतिष्ठित बहिन उनकी प्रशंसा करके यह कहती है कि "आप सब तरह इस सभा की अध्यक्षता के योग्य हैं अतः मैं सविनय यह प्रस्ताव करती

हूँ कि आप ही सभाध्यक्षा या सभानेत्री के आसन को सुशोभित करें।" इस प्रस्ताव पर कोई दूसरी बहिन पहिली के कहने पर जोर देकर उसका अनुमोदन यों करती है कि, "अमुक प्रस्तावकर्त्री का कहना सब तरह उचित है, मैं प्रस्ताव कर अनुमोदन करती हूँ कि अमुक महोदया सभा-नेत्री के पद को ग्रहण करें, मैं सभा की ओर से उक्त महोदया से इस बात की प्रार्थना करती हूँ, मुझे आशा है कि समस्त उपस्थित देवियाँ इस विषय में मुझसे सहमत हैं।" यदि कोई बहिन चाहे तो ऐसे ही कुछ शब्दों में अनुमोदन का "समर्थन" कर सकती है। इसके पीछे यदि किसीने प्रस्ताव का विरोध न किया तो जिस सुयोग्य महोदया के लिए प्रस्ताव किया गया है वह उस स्थान को जाकर सुशोभित करती हैं और सब देवियों को प्रणाम करके इस आदर पर कृतज्ञता प्रकाश करती हैं और उस दिन के विषय पर कुछ थोड़ा सा कहती हैं। सभा में छोटी छोटी आठ आठ वर्ष की लड़कियाँ से लेकर बूढ़ी और जवान सब को चुप बैठना चाहिए। आपस में कुछ

बात चीत न करे और एक दूसरे की ओर तबीयत न लगावे। सब लोगों को एकचित्त होकर उपदेश करने वाली ही की तरफ ध्यान देना और चित लगाना चाहिए।

जहाँ रहैं गुनवन्त नर, तहँ की शोभा होत।
जहाँ धरै दीपक तहाँ, निहचै होत उदोत॥

सभा के बीच में जो बहिनें ग़रीब हों, वस्त्र आदि से सुखी न हों उनको देख कर हँसना नहीं चाहिए।

धन अरु जोबन को गरब, कबहूँ करिये नाहि।
देखत ही मिटि जातु है, ज्यों बादल की छाँह॥

सभा में जो कुछ काम होने हैं उनके होने पर और सब लोगों के व्याख्यान हो जाने पर जब सभा-नेत्री सभा को समाप्त कर दें तब सब बहिनें उठ कर उस कमरे में जावे जहाँ पर कि मिठाई इत्यादि का प्रबन्ध हुआ है और जो कुछ मिठाई इत्यादि हो जल-पान करके, पान और इत्र लेकर आपुस में प्रणाम आदि करके सुखपूर्वक अपने अपने घर जावें। जिनका मकान दूर होवे और वे उस दिन न जा सकें उनको उस

दिन आदर ठहरावें और दूसरे दिन विदा करें। ग़रीब बहिनें अगर अपने यहाँ सभा करने की श्रद्धा करें तो उन्हें उचित्त है कि बिना बनावट ही अपने घर सभा करें और उनके यहाँ जाने में किसी रईस बहिन को कुछ उज़्र न होना चाहिए और अगर उनका आचरण अच्छा है और उनको सच्ची श्रद्धा है तब इससे बढ़ कर और कौनसी योग्यता चाहिए। श्रद्धा से ही कृष्ण जी ने विदुर के यहाँ साग को बड़े प्रेम से खाया, श्रद्धा से ही रामचन्द्र जी ने शवरी के बेर खाये। कौन ऐसी बहिन होगी जो सच्ची श्रद्धा का आदर न करेगी ? जो धनवान बहिनें उनके यहाँ जाने से इनकार करें समझना चाहिए कि उनको अपनी अमीरी का अहंकार है। जितनी बड़ाई समदृष्टि में है उतनी ही छुटाई अहंकार में है। धनवान बहिनों के सजे हुए कमरे से गरीब बहिनों की आम्र और नीम के नीचे की सभा को सुयोग्य बहिनों को कई दरजे अच्छा समझना चाहिए। निमक मिरच के साथ आधी छटाँक चने अगर ग़रीब बहिनें बाँट देवें तो अमीरों की अच्छी अच्छी मिठाई और मुरब्बे से कहीं अच्छा होगा।

एक एक लौंग हमारी ग़रीब बहिनों से जो मिलेगी तो कहीं अमीरों के पान और इलायची से ज्यादा सतकार समझा जावेगा। कमख्वाब और रेशमी गद्दी की कुरसियों के मुकाबले हमारी ग़रीब बहिनों की चटाई पर बहुत ही प्रसन्नता से बैठा जा सकता है। बाद सभा के हमारी बहिनों को उचित है कि जो बात रहस्य की हो और स्त्री समाज के लिए लाभ-दायक हो उसको दिल में समझ लेना और उसके ऊपर धीरे धीरे अमल करना चाहिए। जिस अच्छी बात के अनुकूल चलने से लाभ होना आवश्यक जान पड़ता है उसको अपने भाई से देवर से या अपने पति से प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक नहीं है क्योंकि सभी मरदों को औरतों की ओर एक सा ख्याल नहीं होता और प्रकट न करने से कुछ उन के पतिव्रत में फ़र्क न पड़ेगा। अपने समाज के बारे में हित और अहित की पहिचान करना भी ज़रूरी है, देखो—

"नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, बुरी भली कहि देत॥"

"बचन पारखी होउ तुम, पहिले आप न भाख।
अनपूँछे कहिये नहीं, यही सीख जिय राख॥"

जो हमारे समाज के हितैषी हैं उनको हमारे समाज की भलाई में जो सुख मिलेगा वह उनके चेहरे से मालूम हो जायगा और जो हमारे सुधार के विरोधी हैं उनका चेहरा, उनका बर्त्ताव, उनका आचरण उनके हृदय के सच्चे भाव को प्रकाशित कर देता है। वे किसी तरह भी छिप नहीं सकते॥

शादी विवाह मुंडन इत्यादि

व्याह-शादी अपनी बराबरी वाले से करनी अच्छी है और ऐसे सम्बन्ध में सच्चा प्रेम भी रहता है। विवाह से पहिले लड़की लड़के के रूप, गुण, स्वभाव व बुद्धि, कुल, बल, विद्या इत्यादि की जाँच कर लेनी उचित है। लड़का जाँचने को नाई-बारी, मूर्ख ब्राह्मण या साधारण नौकर या बिरादरी के ही किसी नासमझ को कदापि न भेजे। लड़की के पिता

को या किसी बड़े विश्वास पात्र और योग्य आदमी को भेजे। विवाह निश्चय हो जाने पर तिलक और दायज ठहराना बड़ी निकम्मी बात है। रुपये या माल की बात बीच में लाना लड़कों का मोल-भाव करना है, इसमें ऐसी नीचता है कि लोग रुपये या दायज के लालच में आकर वर-कन्या की योग्यता, कुलीनता वा परस्पर अनुकूलता का विचार छोड़ देते हैं जिससे प्रायः वर कन्या को जीवन भर पछताना पड़ता है और दायज उस वक्त निकम्मा हो जाता है। दायज का प्रश्न इसी लिए लड़की वाले की श्रद्धा पर रखना चाहिए।

कोई भी काम पड़े, ब्याह, मुंडन, विद्यारम्भ, जनेऊ आदि सब में कुछ दिन पहले ही रत्ती रत्ती भर खरच का पूरा ब्योरा बना ले, सब कुछ किफायत रख कर भी अपनी अटकल से डेवढ़े के खरच का बन्दोवस्त कर ले और सब का हिसाब ज्यों ज्यों खरच करे लिखता जावे! नक़द-जिन्स—घी, तेल, नमक, मसाला, मेवा, मिठाई, पान, इलायची, कत्था, सुपारी, इत्र, तेल, कपड़े इत्यादि अन्दाजे से अधिक

मँगा कर रखने चाहिए जिसमें घटे नहीं बलिक समय पर बच रहें। इनके सिवाय मिट्टी के हर तरह के बरतन और लालटेन इत्यादि आवश्यकता से अधिक मँगा लेने चाहिए। रुक्का लिखने वालियों को उचित है कि निहायत होशियारी से रुक्का लिखें ताकि किसी रुक्के में कुछ भूल चूक न होवे, और न दूसरा कोई अपनी ओर से घटा बढ़ा सके, या धोखा दे सके। जिसके लिए लिखा जाय, उसकी योग्यतानुसार चिट्ठे तय्यार करें। तौलनेवाली को चाहिए कि प्रसन्न चित्त होकर शान्ति पूर्वक तौलती जावे। डेरे डेरे में बाँटने वाली अलग अलग नियत रहें। जो जेवनार इकट्ठा बिरादरी के लिए बनवायी जावे उसमें बड़ी सावधानी चाहिए। उचित तो यह है कि जिस के घर कार्य्य प्रयोजन हो वह बड़ी नरमी और दीनता से सब सामान बिरादरी की सुयोग्या बहिनों के हवाले कर दे और भलाई बुराई का भार भी उन्हीं के ऊपर रक्खे, आप जब कभी कुछ कहे तो बहुत मीठे और प्रिय शब्दों में कहे। सामग्री का हिसाब उन बहिनों से कभी न लेवे। जिन्स मिठाई

इत्यादि बटने लगे तो ग़ौर से न देखे। अपना ऐसा स्वभाव कर लेवे कि मानो दूसरे का माल है, दूसरे का काम है, दूसरों पर भार है। यदि किसीका छिपा कर लेते देते देखे तो ऐसा मुँह फेर लेवे कि मानो देखा ही नहीं है। बिरादरी की आयी हुई स्त्रियों का परम धर्म है कि जो कुछ सामग्री उनको बनानी है, उसे बड़ी शुद्धता और पवित्रता से अपने घरों से भी अच्छी पकावें और खिलाते पिलाते समय कमोबेश, न्यूनाधिक का विचार रक्खें, अर्थात् न तो किसीको कम पड़े और न बहुत सा सामान ख़राब होवे। यदि कोई चीज़ कोई अनुचित व्यवहार में लाना चाहे तो उसे रोकना चाहिए। जिसके यहाँ प्रयोजन हो उसे चाहिए कि दिन रात में पाँच दफ़े आये हुए पाहुनों के सामान के लिए पूँछा करे। अर्थात् दिन को ८ बजे, १२ बजे, सायंकाल ५ बजे और रात को १० और १२ बजे देख लेवे, ताकि किसीको डेरे, पलंग, जलपान, भोजन इत्यादि का कष्ट न होवे। सारा दिन रात व्यर्थ बकवाद में या चारपाई पर पड़े पड़े न बितावें। ७ बजे शाम को

एक लम्बी दालान में बिछावन बिछा कर और सब कपड़े बदल बदल कर इकट्ठा होकर बैठ जावैं। एक तरफ़ नाचने गाने वालियों को बैठा देवैं। ७ बजे से ११ बजे तक नाच, गान देखें सुनें, जलसा करें, उत्सव मनावैं। इसके बाद बिरादरी की एक स्त्री उठ कर पान, दूसरी इत्र इत्यादि बिरादरी और नाते रिश्ते की आयी हुई स्त्रियों को बाँटने लगें। साधारण और गाने बजाने वाली स्त्रियों को भी पान इत्यादि बट-वाना चाहिए। सभा उठने के बाद सब स्त्रियाँ कपड़ा बदल बदल कर पहिले गैर लोगों के खाने का प्रबन्ध करें, फिर बिरादरी की सब स्त्रियाँ एक साथ भोजन करें। सोते समय बाहर भीतर सब जगह सब को देख भाल लेवैं कि किसीको कुछ तक-लीफ़ तो नहीं है। उसके बाद आप ईश्वर की प्रार्थना और स्मरण इस तरह करते हुए सोवे कि "हे ईश्वर! यह सब ऐश्वर्य्य और जान-माल सब तेरा है, यह काम भी तेरा ही है।" बिरादरी की स्त्रियों को चाहिए कि जब अपने अपने घर को बिदा होने लगें तो हर चीज़ का हिसाब किताब हँसी-खुशी से

मकान की मालिकिन को देकर और जहाँ रक्खी हों दिखला कर अपने अपने घरों को खुशी खुशी जावें। आपस में "तेरा मेरा" "मैं ने इतना किया, इन्हों ने इतना किया" कदापि न करना चाहिए बल्कि जो कुछ हमदरदी अपने से हो सके सदैव करती रहें। जो किसी ग़रीब बिरादरी के यहाँ कोई काम पड़ जाय तो अमीर बहिनों को चाहिए कि जलसे का ठाट बाट अपनी तरह करें, खाने पीने के लिए जो कुछ मोटा महीन उसके यहाँ तय्यार हो, खुशी खुशी खाना पीना चाहिए, और ज़ियादा भीड़ भाड़ लेकर उसके मकान पर न जाना चाहिए। छोटे छोटे बच्चों और दुलहिनों का, विशेषतः उनके खाने पीने का, ध्यान भीड़ भाड़ में अधिक रखना चाहिए। घर में जो बढ़ी हों उनका भी ख्याल रक्खे। उनके खाने पीने में अतिकाल, बहुत देर, न होने पावे।

जो दुलहिन आवे तो उसको हवादार मकान और आँगन देना चाहिए ताकि उसे आराम रहे। बाग़ बग़ीचे में टहलते समय बहू को भी साथ ले लेना चाहिए। बहू के मकान में एक अलमारी के अन्दर

नाना प्रकार के पकवान तथा मिठाई रखवा देनी चाहिए। बहुत सी उत्तम उत्तम पुस्तकें, लिपि पुस्तक, शिल्प कारी का सामान, तसवीरें, खिलौने, ढोल, सितार इत्यादि बहू के घर में रख देने चाहिए। पति पत्नी के लिए ऐसा मौका देना चाहिए ताकि उनके मिलने मिलाने में कोई हर्ज न हो। थोड़ी थोड़ी बात पर बहू से अप्रसन्न न होना चाहिए और न घुड़की धमकी देनी चाहिए। बहू को भी चाहिए कि यदि उसको कोई शिकायत का मौका पड़े तो पति से न कहे, और न नैहर लिख कर भेजे या वहाँ के लोगों से कहे बल्कि सहनशीलता से उसे भूल जावे। मन का सदा प्रसन्न रक्खे। रोज़ १ घंटा सबेरे १ घंटा शाम को सास के पास बैठ कर गृहस्थी का काम सीखा करे। जब दरबार लगे तो क़ायदे के साथ कपड़े पहिन कर चुप चाप आकर बैठे। बहुत बोलना बहुत हँसना बहू को उचित नहीं है। कोई आवश्यकता आन पड़े तो नौकरानी को इशारा करके बता देवे, आप न उठ पड़े। दरबार नित करना चाहिए। चाहे घर में ४ ही स्त्रियाँ हों, एक घंटा

कायदे से नित बैठा करें। जहाँ अधिक स्त्रियाँ जुटे वहाँ को गम्भीरता की और भी सराहना है।

भवति नीचपदं बहुवक्तृता,
मनुजमुच्चपदं व्रतमौनता।
चरति नूपुर मंघ्रि युगेऽबला,
मणि गणाः कुच कंठ शिरस्थहो॥

भावार्थ—बहुत बोलने से नीचा पद और मौनता से ऊँचा पद प्राप्त होता है। जैसे नपुर (पायजेब) पाँव में और मणियों को शिर इत्यादि में स्त्रियाँ धारण करती हैं।

इसके अतिरिक्त शतरंज-गंजीफा इत्यादि जी बहलाने के लिए सीख कर बिना बाज़ी लगाये खेल लिया करें॥

बिरादरी का भय

इस संसार में जड़ चेतन जितने हैं, सब को बहुत बड़े बड़े भय हैं। परन्तु स्त्री जाति के लिए सब से बढ़ कर बिरादरी का भय होता है। ठीक भी है, अपने प्राण से भी अधिक बिरादरी का भय मानना चाहिए।

आठ वर्ष की उमर से लेकर अपने जीवन भर सदैव बिरादरी का भय रखना उचित है। वाल्मीकीय रामायण में रावण और विभीषण के सम्बाद में जो कुछ रावण ने कहा, उसमें बिरादरी के भय का विस्तार पूर्वक कथन है। बिरादरी प्रसन्न रहे तो लाभ और सुयश बिना परिश्रम होता रहता है। कोई ऐसा सुख नहीं है जो बिरादरी की प्रसन्नता से न प्राप्त हो सके। बिरादरी का बल सब बलों से अधिक है, कोई ऐसा कठिन दुःख भी नहीं है जो बिरादरी के बिपरीत होने से न आवे। वे लोग धन्य हैं, जो लोग गरीब से भी गरीब बिरादरी की प्रतिष्ठा जी से करते हैं और बिना बिरादरी की सम्मति के कोई काम नहीं करते। वे लोग तुच्छ बुद्धि हैं जो कहते हैं कि "बिरादरी हमारा क्या कर सकती है, हम अन्य समाज में चले जावेंगे।" अन्य समाज़ में भी ऐसे आदमी के लिए जगह नहीं है। बिरादरी से सदा डरते रहना चाहिए। कभी कोई बात बिरादरी में बाद बिवाद की भी हो, तो मुँह से न निकाले। जैसे अदालत में सच्ची बातों को बाद विवाद से साबित करने में बड़ी बड़ी कठि-

नाइयाँ पड़ती.ह, वैसे ही बिरादरी मैं भी जब कोई बात आन पड़ती है, तो झूठी को तो कौन कहे, सच्ची बात कहने मैं भी कठिनाई पड़ जाती है। इससे बिरदारी के लोगों मैं कभी बेरुकावट बात न करे। एक घर से अगर कुछ रोज मेल ज्यादा रहे और दूसरे घर से उस मेल वाले से और अपने से बैर रहे तो भी अपने मुँह से बिरादरी के बारे मैं गुप्त बात कदापि न कहे। यह भी याद रहे कि फिर उसी मेल वाले से उस वैर करने वाले से मेल हो जा सकता है। उस समय तो फिर पिछली बातों पर बेवकूफ़ बनना पड़ेगा। हित से हित और शत्रु से शत्रु अगर है तो केवल बिरादरी ही है। इनके साथ जो अच्छी तरह बिना शिकायत ज़िन्दगी बीत गयी तो मानो संसार मैं बहुत ही बड़ा सुयश कमाया। इनसे भी प्रबल शत्रु दसों इन्द्रियाँ हैं, इतना ही डर उनसे भी सदा रहता है। देखिये! एक इन्द्रिय के चूकने से सारी प्रतिष्ठा का नाश हो जाता है, शरीर बहुत संकट मैं पड़ जाता है। इसी तरह रावण वा कौरवों और यदुवंशियों का नाश केवल आपस मैं फूट पैदा होने

से हुआ। आपस की फूट से आदमी बलहीन हो जाता है और बिरादरी की फूट भी ऐसी ही फूट है, क्योंकि बिरादरी एक तरह के ढंग और आचार वाले जन समूह की चेतन वा आत्मा है॥

यम-यातना

हमारे पुराणों और धर्म-शास्त्रों में जो जो बातें हम लोगों के ग्रहण और त्याग करने के लिए लिखी हैं, उन्हें हमारे पूर्वज ऋषियों ने बड़ी दूरदर्शिता से हम लोगों के लाभ के लिए लिखा है, और वैद्यक शास्त्र में तो यह सिद्ध कर दिया गया है कि अमुक काम के करने से अमुक लाभ वा हानि है। उन्हीं बातों को पुराणों में रोचक और भयानक रूपों में दरसाया है कि इस कार्य्य के करने से पुण्य वा पाप होता है। इस पर बहुत से नासमझ बहुत सी बातों पर वृथा झगड़ते हैं। जैसे कपड़ा उतार कर भोजन करने में, वा शीतला के होने पर संयम नियम से रहने इत्यादि

में; अब के लोग कहते हैं कि दोष कुछ नहीं है, बिडम्बनामात्र है। परन्तु ध्यान देकर देखा जावे तो इन सब बातों में भी बहुत से लाभ हैं। कपड़ा उतार कर रसोई खाने में तबीयत साफ़ रहती है, कपड़े पर जूठ का धब्बा नहीं पड़ता, खाने में जी नहीं मचलाता, बदन में हवा लगने से मन शुद्ध रहता है। प्रायः यह सम्भव नहीं है कि सभी पोशाक खाने के समय बदली जा सके, एक धोती बदल लेना ज्यादा आसान है। पहिने हुए कपड़ों को बार बार पहिन कर भोजन करने में कृमि-जन्य रोगों के फैलने का भय अधिक रहता है। इसलिए कपड़े बदल कर सफ़ाई से खाना आवश्यक है। यदि जाड़ा है तो दुशाला ओढ़ लेवे, गर्मी हो तो डुपट्टा ओढ़ लेवे। ग़रीब हो तो उसे सुख जिस तरह हो खा लेवे। और संयम नियम के करने में जो जो फ़ायदे हैं सब पर प्रकट हो सकते हैं। यदि पक्षपात को छोड़ कर न्याय से देखा जावे तो इसी तरह सभी बातों का मतलब खुल जाता है। पुराणों में ८४ नरक बतलाये हैं। अगर इन्हीं के ऊपर ध्यान दिया जावे तो लिखने

वाले ऋषियों का मतलब समझ में आ सकता है। जैसे भागवत के तीसरे स्कन्ध के तीसवें अध्याय में लिखा है कि "व्यभिचारी स्त्री पुरुष के लिए लोहे के पुरुष स्त्री बने होते हैं, जिन्हें अग्नि में तपा कर लाल करते हैं और व्यभिचारी को उससे लिपटना पड़ता है।" इस पर बहुत से लोग हँसते हैं कि यह तो स्त्रियों के घोघो (हौए) की तरह झूठे ख़यालात हैं; और कहीं तो लोग पराशर, विश्वामित्र इत्यादि का दृष्टान्त देने लगते हैं। परन्तु उन लोगों को मिसाल देना नासमझी है, क्योंकि वे विज्ञानी थे और उन्होंने व्यास जी महाराज ऐसे पुत्र को उत्पन्न किया। अब तो ऐसे दिमाग़ के लोग होते हैं कि जिनसे सुयोग्य सन्तान होनी भी दुर्लभ है। इससे बुरे कर्म से सदा बचना चाहिए। मरने पर यमदंड क्लेश होता हो या न होता हो सच पूछो तो जीते जी ही बहुधा भुगत लेना पड़ता है। व्यभिचारियों का अत्याचार धीरे धीरे जब बढ़ जाता है तो ऐसे ऐसे तप्त लोहे सी स्त्री पुरुष से काम पड़ जाता है जिसकी बदौलत नहीं मालूम कितनी यम-यातना भोगनी पड़ती है। गर्मी, सुज़ाक

कुष्ठ आदि का दुःख लोग भोगते है। जो लोग कि व्यभिचारी नहीं और एक पत्नीव्रत रखते हैं या जो स्त्रियाँ पतिव्रता हैं, वे कभी ऐसे रोगों में नहीं फँसती। यदि उन व्यभिचारी रोगग्रस्त पापियों से पूछा जावे तो वह स्वयं कहेंगे कि हम लोहे से कहीं अधिक कष्ट भोग रहे हैं। इसी प्रकार उनके दुःख को समझना चाहिए कि जिन माता पिता के सामने लड़के को पहिले मृत्यु हो जाती है। उनके कलेजे पर पुत्र शोक का कैसा घाव लगता है। जिन स्त्रियों को वैधव्य भोगना है उन पर कैसा संकट पड़ता है?

पति बंचक पर पति रति करई।
रौरव नरक कलप सत परई॥
पति प्रतिकूल जनमि जहँ लाई।
विधवा होइ पाइ तरुनाई॥

इसी तरह यदि विचार कर देखा जावे तो इसी जन्म में मनुष्य अपने बुरे कर्म्म के फल चौरासी नरक भोग रहा है। यदि कोई पूछे कि क्या सुकर्म्मी लोगों को यह बीमारी नहीं होती, तो समाधान यह है कि

सुख और दुःख की बारी सुकर्मी और कुकर्मी दोनों को यों पड़ जाती है—

जितने शुभ कर्म्म हैं, उनमें कुछ विघ्न रूप अशुभ ऐसे मिले हुए हैं, जैसे जल में कीचड़। उसी तरह अशुभ कर्म्मों के साथ भी शुभ का ऐसा मेल है, जैसे कीचड़ में जल। शुभ कर्म्मों में अशुभ यों शामिल हो जाता है कि शुभ कर्म्म करते करते अधिकता होने पर वह कर्म्म सामान्य दशा से बाहर होने लगता है और अहंकार दोष पैदा हो जाता है। इसीसे नीति-कारों ने लिखा है कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्"—अर्थात् अंदाजे ही से सब काम करने चाहिए।

"एक गऊ जा देइ विप्र को सो सुरलोक तरै,
कोटि गऊ राजा नृग दीन्हैं सो भवकूप परै॥"

इसी तरह अशुभ कर्म्म में भी शुभ का प्रयोग देखिए कि वाल्मीकि जो अशुभ कर्म्म करते हुए शुभ कर्म्म करने लगे या गणिगा, गिद्ध, अजामिल आदि के कर्म्मों पर ध्यान देकर समझना चाहिए, अर्थात् यदि अशुभ कर्म वाले एकाएक सुखी हो जावें तो उनके लिए समझना चाहिए कि इन्होंने अपने अशुभ कर्म्मों में

पश्चाताप और घृणा की होगी, जिससे इनका पाप निवृत्त हो गया। यदि कोई शुभ कर्म्म करते हुए एकाएकी दुःखी हो जाय तो समझना चाहिए कि इसके शुभ कर्म्म में भी उसी तरह किसी अशुभ कर्म्म का प्रवेश हुआ होगा। जैसे नारद मुनि, गरुड़, का - भुशुंडि आदि को अज्ञान के कारण नाना दुःख भोगने पड़े। सुख और दुःख दोनों का अन्त होता है। जिस तरह ज़िन्दगी की मीआद है उसी तरह सुख और दुःख की भी मीआद है। जो लोग यहाँ पर समाज या अदालत से छिप कर दुष्कर्म करते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि यहाँ की अदालत से तो हम छिपा कर बुरे कर्म्म कर रहे हैं, परन्तु उस मालिक से तो छिपाने की कहीं जगह नहीं है। दस पाँच आदमी जिनके आश्रित होते हैं उन छोटे राजाओं के यहाँ जब रोज़-नामचा लिखने वाले हैं तो क्या इतनी बड़ी सृष्टि के सर्व-शक्तिमान स्वामी के यहाँ ऐसे प्रबन्ध में कोई कठिनाई हो सकती है? अदालत से कोई भले ही छिपावे, परन्तु जिससे कोई बात छिप नहीं सकती,

उसे फसला करने और कर्म्म के प्रति-फल देने में क्या रुकावट है।

"राम झरोखे बैठि के, सब का मोजरा लेइं।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसी देइं॥"

साधु का माहात्म्य

जो पुरुष अपनी बाहरी और भीतरी दोनों शक्तियों को निरोध करके उन के नायक मन को अपने बस रखता है, उसे "साधु" कहते हैं, चाहे वह किसी जाति का हो, अथवा कैसे ही वेषवाला हो। आज कल अब बहुत से लोग साधु महात्माओं में भक्ति कम रखते हैं और अपने बुरे स्वभाव से सभी साधु महात्माओं की निन्दा करने लग जाते हैं, परन्तु ऐसा उचित नहीं है। बहुतेरे लोग कहते हैं कि साधु महात्मा वेषधारी अब बहुधा पाखंडी होते हैं किन्तु इसमें यह भी विचारने योग्य बात है कि ऊपर का वेष इस

मामले में कोई पहिचान नहीं है और दूसरे के हृदय की बातों को जान लेना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका कर्म्म तो काए का सा है और हंस से उज्वल और पवित्र बने फिरते हैं। बहुतेरे ऐसे भी हैं जो भीतर हंस से भी अधिक पवित्र और उज्ज्वल हैं परन्तु बाहर से अपना कौए का सा कुरूप बना रखते है। इनके सिवाय बहुत से आदमी ऐसे भी होते हैं जिनका भीतर बाहर दोनों शुद्ध होता है। इसी से बुद्धिमानों ने मनुष्य के स्वभाव की बेर, बादाम और अंगूर से उपमा दी है।

आज कल कुछ ऐसी रीति सी चल गयी है कि आपके द्वार पर कोई भी साधु आ जाय, भला हो वा बुरा, मर्द औरत सभी कहने लगते हैं कि "अजी ये साधु होते तो क्या जंगल में न रहते, भीख क्यों माँगते ?" यह बड़ी मूर्खता का विचार है। जो लोग त्यागी और तपस्वी हैं वे भी बिना भोजन-वस्त्र के रह नहीं सकते और प्रकट है कि जंगल में यह नहीं मिल सकता। इसके लिए उनको अलग कोई गृहस्थी नहीं

है। हमारी ही गृहस्थी उनकी गृहस्थी है। सच्चा साधु हो वा पाखंडी, परन्तु भोजन वस्त्र उसे अवश्य ही चाहिए। यह ठीक है कि 'पाखंडी की सहायता नहीं करनी चाहिए किन्तु केवल रूप देखने से ही पाखंडी और सच्चा नहीं पहिचाना जा सकता। इस लिए झटपट बिना समझे बूझे बाबा जी को स्वार्थी पाखंडी जो बना देती हैं वे थोड़ा अनुचित नहीं करतीं। यह अत्यन्त अनुचित और अयोग्य है।

"मंगन लहहि न जिनके नाहीं।
ते नरवर थोरे जग माहीं ॥"

साधु अभ्यागत का आदर करना उनसे मीठी बात बोलना और अगर देना उचित न समझे वा अपनी शक्ति से बाहर हो, तो बड़ी नम्रता से जवाब देना गृहस्थ का परम धर्म है। उचित तो है कि जहाँ तक हो सके, अभ्यागत साधु महात्मा यदि डेवढ़ी पर आवें तो उनको अपने से जो कुछ बन पड़े, अच्छा शुद्ध भोजन बना कर और बड़ी भक्ति से खिलावे और महात्मा के पास अंचला या कम्मल न हो तो अपने से हो सके तो देवे, और सत्कार पूर्वक यह

कह कर विदा करे कि महाराज फिर कभी इस घर को पवित्र कीजियेगा। अगर सच्चे साधु होवेंगे तो थोड़े ही में बहुत संतुष्ट होकर राही होंगे। सच्चे साधु का पूरा बखान करना हमारी तुच्छ बुद्धि से बाहर है।

"बिधि हरिहर कवि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥"

पद

"भजु मन सन्त समाज प्रयागा।
सुमति छेत्र विस्वास अछयबट,
करत चारि फल लागा॥
हरि रसगंग तरंग सकल सुख,
रोज महातम लागा॥
कल इन्द्रिय कलि कलुष नसावन,
संत योग जप जागा॥
कहै कबीर गंग मन थिर करु,
मज्जन करु अनुरागा॥"

बन्दों संत समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ॥

कौन ऐसा पातक है जो साधु-दर्शन से दूर नहीं भागता ? कौन ऐसा अभागा है जो महात्मा के आशीर्वाद से भाग्यवान नहीं हो जाता ? संसार में जितनी कीर्ति है, जो कुछ लाभ है,—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—सब की प्राप्ति संतों के द्वारा होती आयी है, हो रही है और होगी। सन्तों पर श्रद्धा विश्वास करना चाहिए, यदि सच्चे साधु न भी हुए तब भी तुम्हारा सच्चा विश्वास, सच्ची श्रद्धा तुम्हारे कल्याण का कारण होगी। देखो गीता जो में कहा है—

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः"

अर्थात् यह पुरुष श्रद्धा का ही बना हुआ है जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसाही वह आप हो जाता है।

"किये कुभेष साधु सनमानू।
जिमि जग जामवन्त हनुमानू॥"

जो लोग महात्मा हैं, योगी हैं, ऐसे शांत रहते ह कि उनके दर्शन से मन में शांति की अमृतधारा बहने लगती है।

विषय-वासना-त्याग

वासनात्याग और ज्ञान-प्राप्ति के लिए पुराण, उपनिषद्, अव्यक्तबोध, वैराग्य-प्रदीपिका, गीता आदि अनेक पुस्तकेँ हैँ और बहुत सी बनती जाती हैँ। तुलसीदास जी ने अपनी सतसई मेँ लिखा हैः—

"तन सुखाय जर जर करै, धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना, बिना विचारे ज्ञान॥"

अपनी बहिनोँ के समझने के लिए जो सुगम रीति अल्प बुद्धि मेँ आयी उसीको मैँ लिखती हूँ। जिन बहिनोँ को शौक़ हो, पाँच बरस दृढ़ विश्वास से अभ्यास करके देख लेवैँ। बहिनो, जो दवाएँ वैद्यक मेँ लिखी गयी हैँ, उनकी परीक्षा बहुतोँ ने पहिले अवश्य कर ली होगी। जाँच से पहिले उनके गुणोँ का पता कैसे लग सकता था। जाँच हो जाने पर अब हम लोगोँ को उनके गुणोँ का पूरा विश्वास हो गया है और उनसे लाभ उठाने मेँ सुगमता हो गयी है। जैसे

ज्वर आने पर लोग कुनैन खा लिया करते हैं। इसी तरह विष खाकर जब किसीने धोखा उठाया होगा, तो उसका गुण दोष उसे ज्ञात हुआ होगा। हज़ारों हिकमत और तंत्र हैं जो ठीक ठीक करने से लिखे मुताबिक फल देते हैं। जैसे तेज़ाब से सोना आदि धातुएँ साफ़ हो जाती हैं या अमुक पदार्थ के संयोग से गल जाती हैं, ऐसी बातों को केवल सुनने वा पढ़ने से ही उनके यथार्थ होने का विश्वास न होगा, पूरी परीक्षा करने से ही निश्चय होता है। अब परीक्षा करनेवाले को पहिले यह मालूम करना चाहिए कि तेज़ाब कैसे बनता है। जब यह जान कर तेज़ाब बना कर सोना साफ़ करेगा तो परीक्षक को पूर्ण ज्ञान और सफलता होगी। जैसे दूध में घी सर्वत्र है, परन्तु जान नहीं पड़ता, और फूल में वास है, जो किसी क्रिया से अलग करके इत्र बनाया जाता है। जिस तरह काष्ठ में अग्नि और तिल में तेल है, परन्तु बिना क्रिया के आप से आप उनमें से आग और तेल नहीं निकलता है, वैसे ही इस शरीर में ईश्वर का चमत्कार है परन्तु बिना क्रिया के ईश्वर के चमत्कार का

दर्शन और ब्रह्मज्ञान का अनुभव नहीं होता। जीव और ब्रह्म अर्थात् आत्मा और परमात्मा एक ही हैं परन्तु विना क्रिया के एकता मालूम नहीं होती। सुख, दुःख, पाप, पुण्य शरीर के कर्म हैं परन्तु अज्ञानवश लोग कहते हैं कि "मुझको यह दुःख है, यह सुख है और बार बार जीव मरता है और जन्मता है।" वास्तव में जीव नाशवान नहीं है, उसका शरीर ही बार बार धारण करना पड़ता है।

"ईश्वर अंश जीव अविनासी।
सत चेतन घन आनँद रासी॥"
"छिति जल पावक गगन समीरा।
पञ्च रचित यह अधम सरीरा॥"
प्रकट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा॥

इस शरीर और जीव और ब्रह्म का निरूपण तो अच्छी तरह घटाकाश मठाकाश और सूर्य के प्रतिबिम्ब की उपमा से किया गया है, जिससे बिलकुल साबित होता है कि जीव और ईश्वर में भेद नहीं है। अब इस शरीररूपी एंजिन में जो प्राण वायु है

इसको मुख्य पुरजा समझना चाहिए। इस प्राण वायु को लोग सूत्रधारी भी कहते हैं, क्योंकि शरीर में यही प्रधान है। इसीके आधार पर देह, हाड़, मांस, हाथ, पैर, अँगुली, नख इत्यादि सब निर्भर हैं। इसके अलावा मन, बुद्धि, प्रकृति, इन्द्रियगण ये सब शरीर के चलाने में दूसरे प्रकार के पुरजे हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश सब में प्रधान वायु है। वायु ही से सब में हिलने डोलने की शक्ति रहती है। आकाश सदा सब दशा में सब में वर्तमान है। इस शरीर में पाँच वस्तुएँ और भी मानी गयी हैं। उपदेष्टा, अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता तथा महेश्वर, इन पाँचों के पाँच काम हैं।

(१) उपदेष्टा से प्रत्येक जीव- मनुष्य-पशु-पक्षी- विचारते हैं कि यह काम करूँ या न करूँ, अर्थात् जानवर लोग जब किसी खेत में चरने जाते हैं तो इस विचार से भयभीत होकर देखा करते हैं कि ऐसा न हो कि खेत का मालिक आ जावे और मारे जावें। बन्दर को देखो कि वह कैसे दूर से ही खाने दाने की चिन्ता में लगा रहता है, और इसी डर से

पास नहीं आता, जब घात देखता है तो ले भागता है। ऐसे ही विचार और ठीक ऐसी ही दशा सब पक्षियों की भी है, गोसाईं जी ने कहा है:—

"हित अनहित पसु पंछिउ जाना।
मानुष तनु गुन-ज्ञान निधाना॥"

इसी विचार शक्ति का नाम उपदेष्ट है।

(२) अनुमंता—विचार के पीछे आज्ञा मानने वाली तथा क्रिया करने वाली शक्ति और इन्द्रियाँ अनुमंता हैं। जैसे किसी कुएँ के ऊपर हरी हरी घास है, गौ उसको चरना चाहती है, और इस विचार से कि कुएँ में गिर न पड़ूँ, कुएँ से कुछ दूर खड़ी होकर लपक लपक कर घास चरती है। तो जिस विचार से कि दूर ही से लपक लपक कर चरती है, वह तो उपदेष्टा है और जिसकी शक्ति से लपक लपक कर घास काट रही है उसको अनुमंता कहते ह।

(३) भर्त्ता—जिसके द्वारा भूख प्यास उदर पीड़ा, सिर दर्द, काँटा चुभने आदि का दर्द समझा जाता है, उस शक्ति का नाम भर्त्ता है।

(४) भोक्ता—खाना पहिनना, सोना बैठना सुख दुःख भोगना तथा खाना पीना पचाना आदि की शक्ति को भोक्ता कहते हैं।

(५) महेश्वर—शरीर में जो कर्त्ता अर्थात् आज्ञा देने वाला है, जिसके अनुकूल अच्छे बुरे सब काम होते हैं उस प्रबल शक्ति का नाम महेश्वर है।

यह किसी को योग जप तप करने की किसीको फाँसी देने की आज्ञा देता है और किसीको शरीर की रक्षा करने की किसीको कुए में कूदने की आज्ञा देता है। महेश्वर जो चाहता है, वही मन में आता है। इसका काम बहुत विचार का है, क्योंकि यह किसी द्वारा अच्छा काम कराता है और किसी द्वारा बुरा। कर्म के अनुसार सब किसीको सुख दुःख का फल भोगना तो पड़ता है, किन्तु इस बात पर शंका हो सकती है कि जब कर्म कराने वाला वही प्रबल सम दर्शी शक्तिवान् है, तो वह एक के द्वारा शुभ दूसरे के द्वारा अशुभ कैसे करायेगा? इसे यों समझना चाहिए कि शरीर में जो तेजरूप परब्रह्म है वह अवश्य सम-दर्शी और सच्चिदानन्द है। उस तेजोमयी शक्ति

को महेश्वर नहीं कहेंगे, बल्कि महेश्वर को मन का स्वामी कहना चाहिए और व्यवसायात्मिका और अव्यवसायात्मिका बुद्धि उसकी अर्द्धांगिनी हैं। जैसे ब्रह्म जीव रूप धारण करके माया के वश हो नाना नाच नाचता है, उसी तरह यह भी दोनों बुद्धियों के वश में होकर ऐसे मोह को प्राप्त हुआ है कि जैसी जिसकी बुद्धि हुई वैसी ही उसकी इच्छा और इन्द्रियों की चाह उत्पन्न होती है और मन वही कर बैठता है। इस विषय में अधिक लिखने से पुस्तक बढ़ जावेगी। सूक्ष्म विचार से अन्त को यही बात निश्चित हो जाती है कि ईश्वर की रचना को ईश्वर ही जानता है। जिस अभिप्राय से उसने निर्गुण से सगुण बनाने का विचार किया है, उस पर ही सारे प्रपंच का उद्देश भी निर्भर कर रक्खा होगा। उसके महत्व का लोग सहस्त्रों भाँति विचार और निर्णय करते रहते हैं। परन्तु न किसीने समझा है और न कोई जान सकता है। जैसे किसीने कोई समस्या कही और कवि लोग अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कोई श्रृङ्गार, कोई वैराग्य, कोई करुण रस, कोई वीर रस

आदि में उसकी पूर्ति करते हैं परन्तु, समस्या देने वाले का आशय कुछ और ही होता है जिसे समस्या देने वाला ही जानता है, उसी तरह हम लोग उस परब्रह्म परमेश्वर को रचना के बारे में कुछ नहीं समझ सकते, न कोई दलील कर सकते हैं। केवल इतना समझ में आता है कि—

"भल उ पोच सब विधि उपजाये।
गनि गुन-दोष वेद बिलगाये॥

अर्थात् कर्त्ता ने पाप-पुण्य, जाति-कुजाति, ऊँच-नीच, अमी-हलाहल, मरु-मालव सब का निर्माण किया। किस लिए, क्यों किया,—इसका निर्णय कोई नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी गति मन, बुद्धि, वाणी, सब के परे है। बहिनो! परब्रह्म का बिम्ब अथवा तेज जो हमारे शरीर में टिका हुआ है उसीके प्रकाश से हम लोग बोलते हैं और जितने शरीर के कल पूर्जे हैं अपना अपना काम कर रहे हैं। जब वह प्रकाश नहीं रहता तो सब कल पुर्जे निरर्थक हो जाते हैं अर्थात् कोई काम नहीं देते। वह तेज दिये की तरह हमारे शरीर में है। जैसे दिया सहज

ही सारे घर में उजाला कर देता है वैसे ही वह परमात्मा भी सारे शरीर में चेतन रखता है। पर वह स्वयम् पुण्य-पाप, दुःख-सुख, रूप-गन्ध-रस-स्पर्श आदि किसीसे सम्बन्ध नहीं रखता। वह सत्-चित् आनन्द-रूप सब से परे विराजमान है। शरीर धारण करने का जो गुण है आप से आप हुआ करता है।

यह सब जो म लिख आयी वह "विषय-वासना-त्याग" की भूमिका मात्र है। हमारी बहिनें इस चक्कर में न पड़ें कि मैं ने विषय का सिरनामा कुछ लिखा और वर्णन बहुतेरे भिन्न भिन्न विषयों का कर गयी। बात यह है कि "विषय-वासना-त्याग" के सम्बन्ध म जो बातें मैं ऊपर लिख आयी उनके सिवाय और कई बातें भी क्रम से जानने की ज़रूरत होती है। वे ये हैं:—(१) विचार, (२) ज्ञान. (३) त्याग, (४) क्रिया, (५) कर्म्म, (६) विवेक, (७) विज्ञान। इन विषयों को "विषय-वासना-त्याग" वाले अध्याय का विभाग समझना चाहिए। और अब तक मैं ने "विचार" का वर्णन कियाहै।

(२) ज्ञान

ज्ञान कई प्रकार के हो सकते हैं। मैं चार प्रकार के ज्ञान वर्णन करतीहूँ—

(१) शिल्पज्ञान

स्त्रियाँ शिल्प के बहुतेरे काम अपने आप अपने शौक से करती हैं। जैसे सिकहुली बुनना, जाली बनाना, मोज़े बुनना, कपड़े सीना, चिकनकारी, इत्यादि। कपड़े ही सीने में यहाँ तक जान लेना ज़रूरी है कि इस चीज़ के बनाने में इतना कपड़ा, ऐसे काट से लगेगा और ऐसे फंदे और इस नम्बर की सुई ठीक होगी। तैयार होने पर जैसी जैसी शकल हो, उसके अनुसार गोटा किनारी चम्की वगैरा सब ज़रूरी चीजों का पहिले से ऐसा अन्दाज़ा ठीक ठीक जान लेना कि न एक सितारा कम हो और न एक अधिक हो। ऐसे ज्ञान को शिल्पज्ञान कहते हैं।

(२) शास्त्र ज्ञान

पढ़ने में भाषा का ज्ञान, व्याकरण, तर्क, छन्द, अलंकार और तरह तरह के विषयों पर निबन्ध लिखने

की शक्ति, काव्य ग्रन्थोँ का पढ़ना, समझना और उत्तम उत्तम भावोँ को जानना शास्त्रज्ञान है।

(३) आत्म ज्ञान

आत्मा और परमात्मा की एकता, ईश्वर के सूक्ष्म और विराटरूप, और उसकी सत्ता को यथार्थ जान लेना आत्मज्ञान है।

(४) अनुभवज्ञान

अनुभवज्ञान—जो जो बातेँ शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञान द्वारा मालूम हुई होँ उनको अमली तौर पर कर देखना, और बहुत सी ऐसी बातेँ भी जान लेना जो असाधारण होँ किन्तु उच्च नेसर्गिक नियमोँ के अनुकूल होँ। अनुभवज्ञान योगियोँ को होता है जिसके द्वारा वे इतना ज्ञान प्राप्त कर लेते हैँ कि त्रिकालज्ञ हो जाते हैँ।

विषय-वासना-त्याग के लिए केवल आत्मज्ञान की आवश्यकता है। आत्मज्ञान के लिए जो बातेँ सोचने और विश्वास करने की हैँ वे यही हैँ——परमात्मा निर्विकार निरंजन निराकार सत्य

चैतन्य और परमानन्द है। जितनी सृष्टि है सबका चलानेवाला वही है। उसीकी सत्ता से पेड़ हरे भरे फल फूल से लदे हैं और उसी की शक्ति से सूख कर ठूंठे हो जाते हैं। पहाड़ पृथ्वी जल वायु सूर्य्य चन्द्रमा नक्षत्र स्थावर जंगम जलचर नभचर जितने जड़ चेतन हैं सब उसी पर अवलंबित हैं। सुख दुःख देने वाला, मारने जिलाने वाला, कर्म्म कारण कर्त्ता धर्त्ता सब वही है उसकी इच्छा विना पेड़ के पत्ते तक नहीँ हिलते, काँटे पैर मेँ नहीँ चुभते। वही शत्रु है, वही मित्र है। हर किसी को जब जैसी ज़रूरत समझता है, वैसा फल देता है। किसी को गुरु होकर उपदेश देता है, किसी को पति पुत्र होकर सुख और किसी को दुःख ही देता है। ऐसी सब बातोँ को सोच विचार, उसकी इच्छा पर संतुष्ट हो जिसका चित्त केवल उस एक सच्चिदानंद के ही अवलंब पर टिक जाता है और जो सुख दुःख मेँ कुछ भी भेद नहीँ मानता बल्कि उन्हेँ एकसा समझ कर सहता है, और किसी को दोष नहीँ देता, वही सच्चा ज्ञानी है।

(३) त्याग

ज्ञान का उपदेश कठिन है। पूराज्ञान और विश्वास गीता आदि ज्ञानोपदेश की पुस्तकों के देखने और सज्जनों के सत्संग से हो सकता है। मैं एक मोटी मिसाल से समझाती हूँ। वैराग्य का बीज दुःख अथवा ऊँचे दरजे की विद्या है। इन्हीं दो बातों से वैराग्य आता है। अर्थात् जब मनुष्य संसारी दुःखों से अत्यन्त पीड़ित होता है, और कोई यत्न दुःख दूर करने का नहीं देखता तो बेबस होकर ईश्वर का अवलंब करता है और अज्ञान को छोड़ता है। इसी तरह शास्त्रज्ञान से भी मनुष्य संसार को सपने की तरह झूठा और अनित्य जान कर वैराग्य और त्याग धारण करता है। मन में इस प्रकार वैराग्य का बीज बोना उचित है कि यह संसार सपने की तरह अनित्य और दुःखदायी है। फिर विचार करे कि इस झूठे संसारिक व्यवहार में क्यों पड़ता हूँ। जो नित्य है उसी को शरण क्यों न लूँ? ऐसे ऐसे विचारों के द्वारा त्याग करना चाहिए कि यदि पति की ओर से अपना ध्यान हटा लेने में यह

ख्याल करूँ कि पति को भोजन कैसे मिलेगा, बीमारी में उनकी सेवा कौन करेगा, तो वृथा है क्योंकि यदि ईश्वर को पतिदेव की सेवा करानी मंजूर है तो क्या बहू और पुत्र द्वारा न करायेगा, या जो मैं आज ही मर जाऊँ तो क्या ईश्वर अपने बन्दे पर ख्याल करके कोई न कोई सूरत निर्बाह की न निकालेगा, या मैं न मरूँ किन्तु पतिदेव ही छोड़ कर पहिले चल बसें, तो मुझे जीवन के शेष दिन काटने ही होंगे। अतएव ईश्वर पर भरोसा करके दिल से सांसारिक पति से भी विरक्त हो जाना चाहिए। इसी तरह लड़कों का सम्बन्ध हृदय से छोड़ने में यदि यह ख्याल हो कि अभी लड़के छोटे हैं, मेरे छोड़ने से इन्हें दुःख होगा, अभी ये अपने हित मित्र से मिलने योग्य नहीं हैं, घर का माल असबाब सब लुटा देंगे तो वृथा है। क्योंकि जिस बच्चे के मा बाप दूध पीते को छोड़ कर मर जाते हैं, वह बच्चा किसी न किसीके द्वारा पल कर ऐसा योग्य हो जाता है कि अपनी जाति और देश के कल्याण के काम में देशभक्त-शिरोमणि हो जाता है; और जिनके माता पिता करोड़ों यत्न से पालन

पोषण करते हैं वे पागल हो जाते हैं। डाक्टर हकीम वैद्य हज़ारों तद्बीर करते हैं, माँ बाप गोद में लिये मुँह ताकते रहते हैं, परन्तु लड़का मर जाता है। ग़रीबों के बच्चों को देखिये कि उनके माँ-बाप रोज़ी कमाने में लगे रहते हैं, और लड़के खेला करते हैं, वे कभी गाड़ी बग्घी के नीचे भी पड़ कर, और ऐसी ही ऐसी हज़ारों जोखिमों से बचते रहते हैं। फिर उसी रक्षक ईश्वर के भरोसे पर मैं भी क्यों न रहूँ। घर मकान जायदाद छोड़ने में जो यह लालच हो कि ऐसे अच्छे मकान बाग़ फुलवाड़ी आदि कहाँ मिलेंगी, तो यह सोचना भी वृथा है क्योंकि यह तो सराय है। माँ-बाप दादा परदादा सभी इनको छोड़ कर चले गये। यदि हम हँसो खुशी इनको न छोड़ेंगे, तो उनकी तरह लाचार हो दुःख से तो एक न एक दिन हमको यह सब अवश्य ही छोड़ने पड़ेंगे।

"वसुधा काहू की न भई"

बाराह भगवान् ने कैसे परिश्रम से पृथ्वी को प्रकट किया कितने मन्वन्तर, कितने कल्प, और

कितने अवतार उनके हो चुके परन्तु एक बार भी उनका साथ पृथ्वी ने नहीँ दिया। फिर इस पर ममत्व रखना लोगोँ की कैसी भूल है! धन के त्याग मेँ यदि यह ख़्याल हो कि धन से परोपकार होता है, दूसरा कोई शायद परोपकार मेँ न लगावे, तो यह भी बड़ी भूल है, क्योँकि बहुत सा धन ऐसे जनोँ और समयोँ का संचित किया हुआ होता है कि लाख कोशिश करो फिर भी वह निरर्थक ही उठ जाता है। दूसरे यह कि मेरा थोड़ा सा धन उस महा ऐश्वर्य्यवान् के आगे कोई चीज़ नहीँ है। जो ईश्वर ऐश्वर्य्य, रूप और जगत् का त्राता है, जो हाथी से चीँटी तक सब छोटे बड़े जीवोँ को भोजन पहुँचाता है, उसकी सृष्टि मेँ जो झरने, तालाब, समुद्र, गंगा इत्यादि नदियाँ हैँ, और जो फल फूल रत्नमय पहाड़, जंगल, बाग़, बग़ीचे हैँ उनके मुक़ाबिले मेँ मनुष्य का खुदवाया कुआँ और लगाया एक आम का पेड़ हुआ तो क्या, और न हुआ तो क्या? उस महा प्रभु जगदीश्वर जगत् त्राता के सामने मेरा तुच्छ धन कोई चीज़ नहीँ है! इस विचार से धन को भी छोड़ना

चाहिए। शरीर सुख के त्याग में ऐसा सोचे कि इस शरीर में इतर फुलेल का बास देने पर भी पसीने से दुर्गन्ध ही निकलती है, और उत्तम उत्तम भोजन, पेड़ा लड्डू जलेबी, आदि खिलाने पर भी साग ही खाने के समान मल हो जाता है, बल्कि साग और फलहार का मल प्रायः ऐसा दुर्गन्धयुक्त नहीं होता जितना मिठाई इत्यादि का। जितना ही सुख इस शरीर को पहुँचाया जाय उतने ही अधिक सुख की आकांक्षा होती जाती है, कभी तृप्ति नहीं होती, बल्कि वही सुख दुःख का कारण होता है। मैं इस शरीर को सोने की कमानी वाले गद्दे पर भी लिटाऊँ तो भी मरने पर काष्ठ की चिता पर लिटाया जायगा और जल कर राख हो जायगा। "सोने के बासन गाड़े रहे, मरे पीपर टाँगी छदाम की हाँड़ी।" इसलिए सुख का त्याग भी उचित है। यह जो लिखा गया है कि मन से पति से भी विरक्त हो जाना चाहिए इस पर बहुत लोग यह यह ख़्याल करेंगे कि स्त्री के लिए पति ईश्वर तुल्य है फिर उससे ही विराग कैसा? इस बात को मैं भी सही मानती हूँ कि भक्ति और

प्रेम के बराबर दूसरा ऊँचा पद नहीं है, और बिना ज्ञान वैराग्य योग जप तप के भी पति की सच्ची भक्ति और प्रेम से हम लोग उसी अक्षय्य सुख के दर्जे पर पहुँच सकती हैं। मेरा यह मतलब नहीं है कि जिसमें ऊँचे दरजे की पति भक्ति और सच्चा इष्टदेव भाव का प्रेम है, वह उस भक्ति-भाव का त्याग करे, बल्कि ज्ञानमार्ग में त्याग की जो उचित क्रिया है वह दिखलायी गयी है, क्योंकि प्रेम भक्ति होते हुए भी कभी कभी ऐसा अवसर आ जाता है कि गुरु माता पिता और पति का भी त्याग हो जाता है। कर्म्म बड़ा प्रबल कारण है, वह क्या नहीं कराता। जब मन में वैराग्य आता है तो किसका त्याग नहीं होता। यह लिख ही चुकी हूँ कि दुःख से वैराग्य आता है। देखिये, जानकी जी को असह्य दुःख पड़ने पर ऐसा मन में विराग हुआ कि श्रीराम जी की सेवा छोड़ कर प्राण ही त्यागने पड़े। सती जी पर भी ऐसा दुःख पड़ा कि शिव जी के त्याग से प्राण ही त्याग दिये। गंगा जी को भी गृहस्थी से ऐसा वैराग्य हुआ कि किसी न किसी बहाने से राजा

शन्तनु का त्याग करना ही पड़ा। मीराबाई को भी पति से नाना प्रकार के अकारण दुःख पाने पर अन्त में पति त्यागना ही पड़ा। देखिये, इतिहास और पुराण में द्रौपदी, अहिल्या, मन्दोदरी, तारा, कुन्ती आदि का माहात्म्य लिखा हुआ है, परन्तु न्याय और विचार पूर्वक देखिये तो उन्होंने भी पातिव्रत भंग किया है। परन्तु दोष होते हुए भी उनमें दोष न लगा, इसका कारण यही है कि इनमें पूरा ज्ञान था और ज्ञान द्वारा सदैव विरक्त थीं। ज्ञान की दृष्टि से सच पूछो तो न कोई किसीकी स्त्री है न पति है न बेटा है, न बेटी है, न मित्र है, न शत्रु है। वही ब्रह्म स्त्री और पुरुष दोनों में है। रानी चूड़ाला जिसका पूरा वृत्तांत योगवासिष्ठ महारामायण में देखने से मालूम होगा, कैसी ज्ञानी थी, और एक बहुत बड़ी प्रतापवती पतिव्रता रानी की कथा जैमिनि पुराण में लिखी है जो पढ़ने योग्य है। इनको देख कर लोग मेरी नादानी को क्षमा करेंगे। ज्ञान दृष्टि से तो उचित रीति पर सब का त्याग करना ही पड़ता है। ज्ञानी मनुष्य बैकुंठ की भी चाह नहीं रखते।

(४) त्याग क्रिया

अब इस त्याग के विचार के पीछे धीरे धीरे त्याग की क्रिया करनी चाहिए जिससे सुख पूर्वक त्याग और इसमें पूरी सफलता हो। ऐसी जगह पर वास करना चाहिए जो एकान्त शुद्ध, पवित्र स्थान हो, जहाँ किसी का आना जाना, बोलचाल तथा किसी प्रकार का भय न हो, और जलका प्रवाह हो, वृक्षादि की शुद्ध सुगन्धित और शीतल वायु हो, झील तालाब झरने के समीप हो अथवा गंगा आदि नदियों के किनारे हो, जहाँ पर जल के तरंग उठते दिखाई देते हों, जिससे दिमाग़ को फायदा हो और चित्त में शुद्ध ज्ञान का उदय हो—ऐसे स्थान में निवास कर प्रातःकाल नेती धोती से शुद्ध हो, स्नान कर खाली पेट पद्मासन अथवा सुखासन में बैठ कर हाथ में माला ले जप और प्राणायाम का साधन करे। यदि अन्य कोई अभीष्ट मंत्र न हो तो ॐ कार या राम या शिव दोही अक्षर के जप में और भी सुभीता है। प्राणायाम में पहिले पाँच ही से शुरू करे जैसे पहले साँस को खींचता जावे और राम राम कहे, जब दस

बार हो जावे तो साँस को धीरे धीरे छोड़ता जावे और ७ बार राम राम कहे। फिर सुख पूर्वक एकाग्र चित्त बैठ कर आनन्द मूर्ति का ध्यान रक्खे और राम नाम का जप राम के उत्तम व्यवहार और गुणों का ध्यान करती हुई करे। यह उस समय तक करे जब तक पेट में दर्द वा दुःख न मालूम हो। नाभि के नीचे कुंडलिनी नाम की हवा रहती है जिसकी चाल नाड़ी की तरह टेढ़ी होती है और वह एकाग्र चित्त होकर ईश्वर भजन तथा लिखने पढ़ने आदि के काम में देर तक बैठने से ऊपर को उठती हैं, उसी से पेट में दर्द मालूम होता है। लोग देर तक बैठने पर जो कहा करते हैं कि बैठे बैठे पेट फूल आया उसका कारण यही है। इस लिए थोड़ा भी दर्द होते ही झट उठ जाय और कुछ देर टहल कर व लेट कर आराम कर ले और मन से जप करती रहे। इसके बाद बहुत हलका भोजन करे जो थोड़े ही काल में पच जाय, जैसे दूध, धान का रस, आम, सेव इत्यादि फल। भोजन इतना कम करना चाहिए कि पेट भारी न हो। भोजन करके टहलती फिरती आराम करती

रहे और मन से जप होता रहे। जब सूर्य्यास्त होने लगे तो फिर प्रातःकाल की भाँति नेती धोती स्नान से शुद्ध हो आसन मार बैठ कर प्राणायाम और जप करे। इसी तरह धीरे धीरे प्राणायाम और बैठक के अभ्यास को बढ़ाती जावे। योँ ही अभ्यास बढ़ाते बढ़ाते जब वह वायु ऊपर को चढ़ती है और छाती तक आसानी से आने जाने लगती है तो सब इन्द्रिय शिथिल हो जाती हैं और अभ्यासी क्रोध अहंकार आदि छोड़कर मौन व्रत धारण करके महात्मा बनने को तैयार हो जाता है। किसी वस्तु के जानने, तीर्थ-व्रत करने तथा नाच तमाशा देखने वग़ैरह की कुछ चाह नहीं रहती। इसी तरह जब वायु (साँस) भृकुटी तक पहुँचती है तो फिर पूरा ज्ञान भूत भविष्यत् काल का हो जाता है। भृकुटी तक साँस पहुँचाने वाले तो नहीं मालूम कैसा कठिन साधन करके उस पद को प्राप्त करते हैं। हम लोगों के लिए इतना ही बहुत है कि छाती तक वह साँस सुगमता से आ जावे और दुनियाँ से विरक्त हो शुद्ध विचार और ईश्वर पर ध्यान लग जावे। अधिक मिहनत और योग-क्रिया

जो लोग करते हैं वे धन्य और दर्शनीय हैं: उनकी महिमा लिखना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। केवल जन्म सफलता का सुगम मार्ग जो मेरी अल्प बुद्धि में आया लिख रही हूं। दुनियाँ में मनुष्य तन पाकर कुछ तो इससे लाभ उठाना अवश्य चाहिए क्योंकि मनुष्य का शरीर दुर्लभ है॥

(५) कर्म

इसी तरह शुद्ध विचार से क्रिया करते करते मनुष्य शुभकर्मी हो जाता है। क्रिया और कर्म में यही अन्तर है कि प्रत्येक कार्य्य में यत्न करना क्रिया कहलाती है, और किया हुआ कार्य्य कर्म कहलाता है। दान पुण्य शम दम दया धर्म शान्ति संतोष मधुर-भाषण परोपकार दीनता विनय सत्य अहिंसा प्रेम भक्ति,—इन्हीं सब शुभ गुणों के ग्रहण और ईश्वर के निरन्तर स्मरण से लोग शुभकर्मी होते हैं और कर्म के शुभ फलों से सहज में ही विवेक आ जाता है।

(६) विवेक

बहुत लोग जो विचार को विवेक समझते हैं वे इस के भेद को नहीं जानते। बहिनों! क्रिया और कर्म की

भाँति इसमें भी यह फ़र्क़ है कि प्रत्येक कार्य्य में गुण दोष आदि का सोचना विचार कहलाता है, और विवेक यह है कि गुणदोषयुक्त कार्य्य में से दोष को अलग करके गुण को ग्रहण करे। जैसे पक्षियों में हंस विवेकी है। वह पानी मिले हुए दूध में से दूध और पानी को अलग कर देता है। कृमियों में चींटी विवेकी ह कि बालू मिट्टी मिला हुआ गुड़ का लड्डू उनको खाने को दिया जाय तो बालू को अलग करके गुड़ को खा लेती हैं। ऐसी सामर्थ्य दूसरे में नहीं है। देवताओं में इसी तरह शिव के विवेक को देखना चाहिए—

रामायन सत कोटि महँ, लिय महेस जिय जानि।

सौ करोड़ रामायण में से दो अक्षर "राम नाम" रूपी सार पदार्थ को उन्होंने निकाल लिया। इसी तरह मनुष्य में भी ईश्वर का भजन, चिंतन और आराधन करते करते विवेक आ जाता है॥

(९) विज्ञान

जब मनुष्य में विवेक आ जाता है तो वह विज्ञानी भी हो जाता है। हंस की भाँति हमको किस

पदार्थ में से क्या निकालना चाहिए, इसका अभ्यास करते करते और शास्त्र पुराण आदि के अवलोकन और मनन से जब आत्मज्ञान हो जाता है और जब मनुष्य हाथी से चींटी तक सब जीवों में एक ब्रह्म की सत्ता को जान लेता है तो वह इस आत्मज्ञान से, इस ब्रह्म विवेक से, विज्ञानी हो, सारे योग जप तप आराधना ज्ञान वैराग्य क्रिया कर्म्म आदि से निवृत्त हो सुख पूर्वक आनन्द चित्त हो विचरने लगता है। फिर उसको अपने और पराये सब जीवों में और डाली डाली पात पात सब में ब्रह्म ही ब्रह्म दिखलाई पड़ता है। बस फिर समदृष्टि, सत्यदृष्टि आ गयी और जन्म उसका सुफल हो गया। इसी भाँति क्रमशः शुभ-कर्म्मी लोग विषय वासना के त्यागी बन कर आनन्द लूटते हैं। ऐसेही शुद्ध चित्त से साधन करने वाले मामूली लोगों को अथवा बालकपन से मरने तक शुद्ध विचार और नियम पूर्वक जीवन व्यतीत करने वालों को भी आप से आप ज्ञान हो जाता है और सहज ही इस सत्य पर विश्वास हो जाता है।

बहिनोँ! पुस्तक पढ़ने से ही वह सुख नहीँ प्राप्त हो सकता जो उसकी भली बातोँ पर अमल करने से होता है। जैसे किसी ने मिठाई न खायी हो उससे कहा जावे कि ऐसी मीठी दूसरी चीज़ नहीँ होती तो वह इतना ही कह सकता है कि मिठाई मीठी होती है किन्तु उसे वह सुख कहाँ मिल सकता है, वह बात कहाँ मालूम हो सकती है, जो चखने वाले को सम्भव है, जो कि उसके स्वाद और पाचन शक्ति को जानता है, जो उसके रूपरंग को देख कर और हाथ से छू कर उसके किरकिरे पन और मुलायमियत इत्यादि को जानता है। इसी तरह जो इन बातोँ पर ख्याल करके अमल और अभ्यास करेगा वही इस लेख पर विश्वास करके सुख उठावेगा। केवल पढ़ने से ही किसी को कुछ लाभ नहीँ हो सकता। इन बातोँ पर अमल करने मेँ कुछ कठिनाई भी नहीँ है। बहुतेरे पवित्र हृदयवाले इसी तरह पर चल कर दुनियाँ मेँ सुख उठा रहे हैँ और बहुत से हमारे देखते देखते इस लोक और परलोक दोनोँ को सँभाल कर संसार मेँ बड़ाई पाकर चले गये।

दुनियाँ मैं जिसको जैसी निन्दा, सुयश, सुख, दुःख, कर्म्मानुसार प्राप्त हैँ, वैसी ही निन्दा, सुयश, सुख, दुःख का भोग उसके लिए परलोक मैं भी समझने चाहिए।

अधिक लिखने से पुस्तक बढ़ जायगी और शायद बहुतेरी बहिनैं आलस मैं आकर न पढ़ैं। इसलिए अब इस पुस्तक को समाप्त करते हुए अपनी बहिनों से हाथ जोड़ कर निवेदन करती हूँ कि आद्योपान्त ध्यान देकर अवलोकन करके मेरे परिश्रम तथा मनोरथ को सफल करैं। चाणक्य नीति मैं छठे अध्याय के पन्द्रहवैं दोहे को देखिये—

एक एक बक सिंह से, चार कुकुट गुण लीन।
पाँच काग षट श्वान से, औ गद्हे से तीन॥

बुद्धिमान् लोग पशु पक्षियों से भी गुण निकाल लेते हैँ। हम लोग तो आपस मैं बहिन है। एक ही जगह को आने और जाने वाली हैँ, एक ही स्वामी के द्वारा हम लोग जीते जागते खाते और पीते हैँ। इसलिए आपस मैं एक दूसरे की भलाई,

उन्नति, हित, शिक्षा और गुण ग्रहण करना ही उचित है। बहिनो! पुस्तकें देखने की आदत बहुत अच्छी होती है। मेरी ऐसी आदत है कि कैसी ही छोटी बड़ी पुस्तक हुई उसको आदि से अन्त तक देख डालती हूँ और लिखने वाले के अभिप्राय व बुद्धि की तीव्रता पर ध्यान दिये बिना नहीं छोड़ती। बहुत बहिनें जब कहीं सदुपदेश, बैबिल वग़ैरह की पुस्तकें पाती और पढ़ती हैं तो घर की बड़ी बूढ़ियाँ और हठधर्म्मी और पक्षपाती मर्द लोग पुस्तक का नाम ही सुन कर शोर मचाने लगते हैं कि इस पुस्तक को घर में रखना और पढ़ना नहीं चाहिए, बल्कि फाड़ कर फेंक देना चाहिए। देखिये ये अंग्रेज़ लोग ऐसा कभी नहीं करते। चाहे जिस क़ौम, मज़हब या मत की पुस्तक हो बिना किसी पक्षपात वा ईर्षा के देख जाते हैं और उसमें जो बात गुण की और अपने मतलब की समझते हैं वह निकाल लेते हैं। यदि वह हमारी विद्या से घृणा करते तो कदापि ऐसी शीघ्र उन्नति न कर सकते और बहुत से फ़ायदे न उठा सकते। कितने ही अंग्रेज़ संस्कृत की प्रशंसा करते

और बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। सदुपदेश में जप तप यज्ञ दान धर्म्म नीति सत् व्यवहार वग़ैरह कुछ भी मना नहीं किया है, बहुत सी अच्छी अच्छी बातें लिखी ह, एक मूर्ति पूजा का ही खण्डन किया है, इसी सबब से लोग उसको फाड़ के फेंक देने के लायक़ कहते हैं। हालां कि पुराण वग़ैरह में भी सारी कथाएँ और प्रपञ्च के बाद जब ज्ञानकाण्ड को कथन किया है अथवा गीता और उपनिषद् आदि में जो उपदेश है उसमें भी वही बात है। बिना सब मतों की पुस्तकों को देखे सब का अभिप्राय नहीं खुलता। पहिले जब अपने मज़हब वा स्वधर्म की बात अच्छी तरह समझ में आ जाय तो अन्य पुस्तकों के पढ़ने से कभी कोई हानि नहीं हो सकती। यदि हम को मूर्ति पूजा में भक्ति और सच्चा प्रेम है, ज्ञान और मुक्ति प्राप्ति का सरल मार्ग उसे ही समझती हैं तो क्यों छोड़ें। पढ़ने का तो यही मतलब है कि जो अच्छी बात हो उसको समझ लेवे। और जो अपने मत के विरुद्ध हो तथा अनुचित हो उस पर अमल न करे।

किसी मत के ग्रंथ को घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। जिन मतों के लाखों अनुयायी हैं उनके प्रवर्त्तक अवश्य महात्मा रहे होंगे। उनके बनाये हुए ग्रंथों को केवल हठधर्मी के कारण घृणा से देखना कभी उचित नहीं हो सकता। सब मतों के धर्म-ग्रंथों में अच्छे अच्छे उपदेश हैं, शुद्ध विचार हैं, सदाचार के नमूने हैं। सच पूछो तो अपने धर्म का गौरव और तत्व भी तभी मालूम होता है जब और और धर्मों का भली भाँति अवलोकन किया जाय। बहिनो! मैंने बैबिल, सदुपदेश, कबीर के बीजक, गुरुमुखी, नानकशाही—सब अच्छी तरह सावधानी से तीन तीन दफ़े पढ़े हैं, और उपनिषद गीता आदि भी सब यथाशक्ति पढे हैं परन्तु समझने की उमर से अब तक किसी नियम व्रत, दुर्गादेवी की पूजा पाठ, गुरु ब्राह्मण का सत्कार वग़ैरह नहीं छोड़ा और न उनमें कभी अश्रद्धा हुई। जिसकी जैसी आराधना उपासना हमारे नैहर और ससुराल में होती रही है वैसी ही मैं बराबर करती रही हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि जैसे पुरइन का पत्ता

जल में रहते हुए भी जल से अलग रहता है तैसे ही किसी संकल्प वा कामना से पूजा-पाठ कभी नहीं किया। नियमानुसार पूजा करती और सब के साथ व्रत रहती हूँ॥

बहिनो! ऐसा समझ कर अपने नियम व्रत आदि को नहीं छोड़ना चाहिए कि बुद्धिमान और ज्ञानी लोग गृहस्थाश्रम में ही रह कर परिवार, धन आदि के लोभ मोह को त्यागते हुए भी निष्काम आराधना और उपासना किया करते हैं और जब गृहस्थी से अलग होते हैं तो साथही उपासना आराधना सभी छोड़ देते हैं। इसी तरह हम लोगों को भी गृहस्थी में सब व्यवहार व्रत उपासना आदि करना आवश्यक है; जैसे गृहस्थाश्रम के और सब व्यवहार हैं उसी तरह एक व्यवहार उपासना को भी समझना चाहिए। और यह बड़ी विपरीत बुद्धि की बात है कि पूजा पाठ देवराधना करने में तो लोग ब्रह्मज्ञानी बनते हैं और द्रव्य संचय फ़ीस आदि का रुपया लेते समय ब्रह्मज्ञान भूल जाते हैं। ब्रह्मज्ञानी तो उन्हें जब समझें कि इधर रुपया हाथ आया उधर फ़ौरन उदार

चित्त से परोपकार में दे दिया। उलटे यह देखने में आता है कि लोग स्वार्थ के लिए तो कैसा ही भला बुरा काम हो करने पर तय्यार हो जाते हैं, पर उपासना में यह बहाना कि पत्थर को मूर्ति पूजने में क्या है। सदुपदेश को और सब बातों को अच्छे अच्छे उपदेशों को तो मानते नहीं, मांस खाना जो महा पाप है उसे छोड़ते नहीं। एक मूर्ति पूजा ही के विरोधी और उपदेशक बन जाते हैं। बहिनो! ब्रह्मचर्य्य गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ अथवा संन्यास जिस ही आश्रम में हो शास्त्रानुसार उसी आश्रम को क्रिया पर ठीक ठीक चलने में बड़ाई और सफलता मिलती है। स्वधर्म की हानि कभी किसी प्रकार न होनी चाहिए। इसी बात पर मैंने यह पुस्तक लिखी है। फिर भी अपनी बहिनों से हाथ जोड़ कर विनय करती हूं कि जहाँ कहीं मेरी भूल चूक हो उसको बड़ी बहिन मुझको छोटी समझ कर और छोटी बहिनें मुझे बड़ी समझ कर क्षमा करेंगी। मेरी समझ में आप लोग मलयाचल हैं और मेरी यह पुस्तक नीम है, किन्तु

आप लोगों के कर कमल में पड़ने से निःसन्देह यह पुस्तक भी चंदन हो जावेगी ॥

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा ।
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण ।
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनास्स्युः ॥

उस सोने के सुमेरु पर्वत से क्या और चाँदी के कैलास से भी क्या जिनके आश्रित पेड़ सदा जैसे के तैसे ही बने रहते हैं। हम तो मानते हैं मलयाचल को, जहाँ कंकोल नीम और कुटजा आदि कड़वे पेड़ भी चंदन हो जाते हैं॥

इसी तरह बहिनो! बड़ाई इसी में है कि दूसरों के अवगुण को गुण बना लेवे। किसी की बनायी पुस्तक हो उसका मतलब समझना चाहिए। हमलोगों में सुघराई और चतुराई कहाँ से हो सकती है क्योंकि हमेशा से देहात और अकेले घर को रहने वाली हैं। मैंने अपनी जीवनी में अपने गँवारपन और गुज़र का हाल सब लिख दिया है। उसके छपने पर आप लोगों को विदित होगा कि किस तरह से मैं अपनी

जिन्दगी बिता रही हूं। यहाँ पर भी यदि जीवनी से कुछ लिखूँ तो पुस्तक बढ़ जायगी। इसके सिवाय तीन और पुस्तकें मैं लिख चुकी हूं। (१) भोजन विधि, (२) दोहे कवित्त, नाटक की रीति पर और (३) शिल्पकारी के विषय पर—इनको भी प्रकाशित करने का विचार है। उर्दू की एक पुस्तक का नागरी में तर्जुमा भी किया है। इनके सिवाय अब और कुछ लिखने वा बनाने का इरादा नहीं है और न अधिक कुछ लिखने की योग्यता ही है। परन्तु जो बहिनें कोई विशेष प्रयोजन की चीज़ बनवाना या किसी काम में राय लेना चाहेंगी तो पत्र व्यवहार करने पर उन बहिनों को अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार मैं ज़रूर राय और मदद देती रहूँगी। इस लिए वे जो काम मेरे करने योग्य समझें बिना कुछ भी संकोच के मुझको लिखती रहें॥

पद

धनि है भारत देश जहाँ हिम पर्वत सोहै।
ताके दक्खिन भाग देखि मुनि गन मन मोहै॥
गंगा सरयू मध्य लसत दियरा रजधानी।
तट गोमती सुकोट ओट बिच माया सानी॥१॥
बसत तुम्हारी बहिन "बहिन हित इच्छा" राखै।
है अबला परतंत्र कीर्ति बिमला कहँ चाखै॥
देखि दुखी निज जाति कहे बिन रहा न जावे।
हिये लालसा यहै "जाति मम उन्नति पावे" ॥२॥
यदि मेरी सौभाग्यवती बहिनैं उरधारैं।
अमल करैं, सत भाव हिये बिच सदा विचारैं॥
सफल मनोरथ जानि महा सुख तब मैं पाऊँ।
करि साहस उत्साह गीत उन्नति के गाऊँ॥३॥
शिशु कर झूठा प्यार छाँड़ि भेजो गुरुद्वारे।
पहले जैसे प्रबल वंश जिहिं होहिं हमारे॥
दुष्ट निशाचर मोह द्वेष पल माहिं नसावैं।
कठिन अविद्या अंधकार छन माहिं हटावैं॥४॥

होय देश उन्नति बल विद्या मैं ऊँचो तर।
भागैं हिंसक जन्तु आप कानन समुद्र पर॥
ज़ेवर नक़ली जवाहिरन सौं दृष्टि हटाओ।
निज़ सुवंस की उन्नति मैं धन अधिक लगाओ॥५॥
पति कहँ जानहु ईश तासु सेवा मन लाओ।
सह वासिन सौं प्रीति, दयामय हृदय बनाओ॥
राग द्वेष खट कर्मन के झगड़ौं से हटिये।
देखि एक के गुण को अवगुण ही से बचिये॥६॥
मोर तोर तजि एक होहु मिलि कै सब कोई।
त्यागि परस्पर फूट मिलौ सब एकहि होई॥
तौ भारत जौं डूब गयऊ पातालहु माँहीं।
छन महँ तेहिं ऊपर लैएहहिं संशय नाहीं॥७॥
बहुत भार भारत कर उन नव युवतिन पर हैं।
जो आगामी काल माहिं भारत तरु तर हैं॥
वे अपने कर औरन से बल अधिक लगावं।
तौ भविष्य महँ उन्नति के फल उत्तम पावं॥८॥

आप बहिनों की हितचिन्तिका,

रानी दियरा।

